ओशो ध्यान योग

अनुक्रम

1. साधकों को लिखे पत्र...2
2. प्रवचन-अंश..7
3. ध्यान--एक वैज्ञानिक दृष्टि...9
4. विभिन्न ध्यान प्रयोग..13
• सक्रिय ध्यान...13
• कुंडलिनी ध्यान...14
• नटराज ध्यान...14
• नादब्रह्म ध्यान...15
• विपश्यना ध्यान...16
• गौरीशंकर ध्यान...17
• मंडल ध्यान...17
• प्रार्थना ध्यान...18
• सामूहिक प्रार्थना ध्यान...19
• रात्रि-ध्यान...19
• शिवनेत्र ध्यान...19
• अग्निशिखा ध्यान...20
• त्राटक ध्यान 1..21
• त्राटक ध्यान 2..21
• कीर्तन ध्यान...22
• सूफी दरवेश नृत्य..23
5. प्रवचन-अंश..25
6. साधना सूत्र...31

ओशो ध्यान योग
अध्याय -1

साधकों को लिखे पत्र

ध्यान में घटने वाली घटनाओं, बाधाओं, अनुभूतियों, उपलब्धियों, सावधानियों, सुझावों तथा निर्देशों संबंधी साधकों को लिखे गए ओशो के इक्कीस पत्र

अंततः सब खो जाता है

सुबह सूर्योदय के स्वागत में जैसे पक्षी गीत गाते हैं--ऐसे ही ध्यानोदय के पूर्व भी मन-प्राण में अनेक गीतों का जन्म होता है। वसंत में जैसे फूल खिलते हैं, ऐसे ही ध्यान के आगमन पर अनेक-अनेक सुगंधें आत्मा को घेर लेती हैं। और वर्षा में जैसे सब ओर हरियाली छा जाती है, ऐसे ही ध्यान-वर्षा में भी चेतना नाना रंगों से भर उठती है, यह सब और बहुत-कुछ भी होता है। लेकिन यह अंत नहीं, बस आरंभ ही है। अंततः तो सब खो जाता है। रंग, गंध, आलोक, नाद--सभी विलीन हो जाते हैं। आकाश जैसा अंतर्आकाश (इनर स्पेस) उदित होता है। शून्य, निर्गुण, निराकार। उसकी करो प्रतीक्षा। उसकी करो अभीप्सा। लक्षण शुभ हैं, इसीलिए एक क्षण भी व्यर्थ न खोओ और आगे बढ़ो। मैं तो साथ हूं ही।

मौन के तारों से भर उठेगा हृदयाकाश

जब पहले-पहले चेतना पर मौन का अवतरण होता है, तो संध्या की भांति सब फीका-फीका और उदास हो जाता है--जैसे सूर्य ढल गया हो, रात्रि का अंधेरा धीरे-धीरे उतरता हो और आकाश थका-थका हो, दिनभर के श्रम से। लेकिन, फिर आहिस्ता-आहिस्ता तारे उगने लगते हैं और रात्रि के सौंदर्य का जन्म होता है। ऐसा ही होता है मौन में भी। विचार जाते हैं, तो उनके साथ ही एक दुनिया अस्त हो जाती है। फिर मौन आता है, तो उसके पीछे ही एक नयी दुनिया का उदय भी होता है। इसलिए, जल्दी न करना। घबड़ाना भी मत। धैर्य न खोना। जल्दी ही मौन के तारों से हृदयाकाश भर उठेगा। प्रतीक्षा करो और प्रार्थना करो।

ऊर्जा-जागरण से देह-शून्यता

ध्यान शरीर की विद्युत-ऊर्जा (बॉडी इलेक्ट्रिसिटी) को जगाता है-- सक्रिय करता है--प्रवाहमान करता है। तू भय न करना। न ही ऊर्जा-गतियों को रोकने की चेष्टा करना। वरन, गति के साथ गतिमान होना--गति के साथ सहयोग करना। धीरे-धीरे तेरा शरीर-भान, भौतिक-भाव (मैटेरियल-सेन्स) कम होता जाएगा और अभौतिक, ऊर्जा-भाव (नॉन मैटिरियल इनर्जी-सेन्स) बढ़ेगा। शरीर नहीं-- ऊर्जा-शक्ति ही अनुभव में आएगी। शरीर की सीमा है--शक्ति की नहीं। शक्ति के पूर्णानुभव में अस्तित्व (एग्झिस्टेंस) में तादात्म्य होता है। सम्यक है तेरी स्थिति--अब सहजता से लेकिन दृढ़ता से आगे बढ़। जल्दी ही सफलता मिलेगी। सफलता सुनिश्चित है।

ध्यान--अशरीरी-भाव और ब्रह्म-भाव

ध्यान में शरीर-भाव खोएगा। अशरीरी दशा निर्मित होगी। शून्य का अवतरण होगा। इससे भय न लें--वरन प्रसन्न हों, आनंदित हों। क्योंकि यह बड़ी उपलब्धि है। धीरे-धीरे ध्यान के बाहर भी अशरीरी भाव फैलेगा और प्रतिष्ठित होगा। यह आधा काम है। श्ल्लाष आधे में ब्रह्म-भाव का जन्म होता है। पूर्वार्ध है--अशरीरी-भाव। उत्तरार्ध है--ब्रह्म-भाव। और श्रम में लगें। स्रोत बहुत निकट है। और संकल्प करें। विस्फोट शीघ्र ही होगा। और समर्पण करें। और, स्मरण रखें कि मैं सदा साथ हूं; क्योंकि अब बड़ा निर्जन पथ सामने

है। मंजिल के निकट ही मार्ग सर्वाधिक कठिन होता है। सुबह के करीब ही रात और गहरी हो जाती है।

कुंडलिनी-ऊर्जा का ऊर्ध्वगमन

शरीर में विद्युत-ऊर्जा जैसा संचार शुभ है। धीरे-धीरे शरीर-भाव मिट जाएगा--और ऊर्जा का बोध ही बचेगा। भौतिक (मैटेरियल) शरीर एक भ्रांति है। वस्तुतः जो है, वह ऊर्जा (एनर्जी) ही है। ऊर्जा (लाइफ एनर्जी) ही अज्ञान में शरीर और ज्ञान में आत्मा प्रतीत होती है। मस्तिष्क में धक्के लगेंगे। लगेगा कि जैसे अब फटा... अब फटा। लेकिन भय न लाना। जीवन-ऊर्जा के हाथों में स्वयं को छोड़ दो। वही भगवत-समर्पण है। ऐसे ही ब्रह्मरंध्र को छोड़ दो। ऐसे ही सहस्र पंखुड़ियों वाले कमल की कली टूटेगी और फूल बनेगी। नाभि-केंद्र पर अपूर्व शांति का जो अनुभव हो रहा है, उसमें रमण करो। उसमें डूबो--उससे एक हो जाओ। जीवन-ऊर्जा का मूल-स्रोत ध्यान में आ रहा है--उसे पहचानो। और, अब किसी भी अनुभव के संबंध में सोच-विचार मत करो! अनुभव करो और अनुगृहीत होओ।

अलौकिक अनुभवों की वर्षा--कुंडलिनी-जागरण पर

कुंडलिनी जागती है, तो ऐसा ही होता है। विद्युत दौड़ती है शरीर में। मूलाधार पर आघात लगते हैं। शरीर गुरुत्वाकर्षण (ग्रेविटेशन) खोता मालूम पड़ता है। और अलौकिक अनुभवों की वर्षा शुरू हो जाती है। प्राण अनसुने नाद से आपूरित हो उठते हैं। रोआं-रोआं आनंद की पुलक में कांपने लगता है। जगत प्रकाश-पुंज मात्र प्रतीत होता है। इंद्रियों के लिए बिल्कुल अबूझ अनुभूतियों के द्वार खुल जाते हैं। प्रकाश में सुगंध आती है। सुगंध में संगीत सुनाई पड़ता है। संगीत में स्वाद आता है। स्वाद में स्पर्श मालूम होता है। तर्क की सभी कोटियां (कैटेगोरीस) टूट जाती हैं। और बेचारे अरस्तू के सभी नियम उलट-पुलट हो जाते हैं। कुछ भी समझ में नहीं आता है और फिर भी सब सदा से जाना हुआ मालूम होता है। कुछ भी कहा नहीं जाता है और फिर भी सब जीभ पर रखा प्रतीत होता है। गूंगे के गुड़ का अर्थ पहली बार समझ में आता है। आनंदित होओ कि ऐसा हुआ है। अनुगृहीत होओ कि प्रभु की अनुकंपा है।

तैयारी--विस्फोट को झेलने की

कुछ करो नहीं, बस देखो। नाटक के एक दर्शक की भांति। नाट्यगृह में--पर नाटक में नहीं। शरीर नाट्यगृह है और तुम दर्शक हो। ऊर्जा उठती है-- ऊर्ध्वगामी होती है तो ऐसे ही आघातों से तन-तंतु कांप-कांप उठते हैं। ऊर्जा अपना नया यात्रा-पथ निर्माण करती है तो आंधी में सूखे पत्तों की भांति शरीर आंदोलित होता है। फिर जैसे-जैसे नए प्रवाह-पथ निर्मित हो जाएंगे वैसे-वैसे ही शरीर की पीड़ा खो जाएगी। फिर आज जो आघात-जैसा प्रतीत होता है, वही आनंद की पुलक बन जाता है। ऐसे आनंद की जो कि शरीर में घटित होता है, पर शरीर का नहीं है। और निकट है वह क्षण। पर उसके पूर्व बहुत बार तूफान आएगा ऊर्जा का और चला जाएगा। तूफान उठेगा और शांत हो जाएगा। इससे चिंतित मत होना। क्योंकि, ऐसे ही विस्फोट (एक्सप्लोज़न) की तैयारी होती है। गौरीशंकर के शिखर-अनुभव (पीक-एक्सपीरियेंसेज) के पूर्व अनेक छोटे-छोटे शिखरों के अनुभव से गुजरना पड़ता है। उससे ही विराट को बूंद में झेलने की क्षमता निर्मित होती है।

अहिंसा--अनिवार्य छाया ध्यान की

ध्यान से मांसाहार तो कठिनाई में पड़ेगा ही। अपने तथाकथित सुख के लिए
अब दुख किसी को भी न दे सकोगे। अहिंसा ध्यान की अनिवार्य छाया है। और, उस ध्यान में कुछ चूक है, जिससे कि अहिंसा सहज ही फलित नहीं होती है। अहिंसा को प्रयास से लाना पड़े, तो भी ध्यान में भूल है। अहिंसा को भी जो साधते हैं, उन्हें वास्तविक अहिंसा का कोई पता ही नहीं है। अहिंसा तो आती है सहज

ध्यान के साथ-साथ, बस, ऐसे ही जैसे सूर्य के साथ प्रकाश। आनंद मनाओ और प्रभु को धन्यवाद दो कि ऐसी ही अहिंसा का पदार्पण तुम्हारे जीवन में हो रहा है।

गहरे ध्यान के बाद जाति-स्मरण का प्रयोग

विगत जन्म की स्मृति में उतर सकते हो। लेकिन, उसके पूर्व गहरे ध्यान (डीप मेडिटेशन) का प्रयोग अति आवश्यक है। उसके बिना चेतना को पीछे लौटाना अत्यंत कठिन है। और यदि किसी भांति संभव भी हो तो खतरनाक भी। इसलिए, गहरे ध्यान के पूर्व मैं कोई सुझाव नहीं दे सकता हूं, उसे कठोरता मत समझ लेना। ऐसा मैं करुणावश ही लिख रहा हूं। साधारण चित्त अतीत-जन्म की स्मृतियों की बाढ़ को झेलने में समर्थ नहीं है। इसलिए, प्रकृति उस द्वार को बंद कर देती है। और पूर्ण तैयारी के बिना प्रकृति के नियमों से खेल खेलना महंगा सिद्ध होता है।

सिद्धियों में रस न लेना

योग से बहुत कुछ संभव है--अतीन्द्रिय, अलौकिक। लेकिन, नियमातीत कुछ भी घटित नहीं होता है। अतीन्द्रिय--अनुभवों और सिद्धियों के भी अपने नियम हैं। चमत्कार भी, जो नहीं जानते उन्हीं के लिए चमत्कार हैं। या फिर, अस्तित्व ही चमत्कार है। पर, जहां तक बने, सिद्धियों में रस न लेना। साधक के लिए उससे अकारण ही व्यवधान निर्मित होता है।

विचारों का विसर्जन

ध्यान में प्रकाश के साथ-साथ बीच-बीच में विचार आते हैं, तो उन्हें देखना--तीव्रता से, पूरी चेतना से--समग्र एकाग्रता से। और, कुछ भी न करना-- बस, द्रष्टा बनना। पर, दृष्टि प्रगाढ़ हो और पैनी। और, विचार खो जाएंगे! बड़े कमजोर हैं बेचारे। लेकिन, हमारी दृष्टि उनसे भी ज्यादा बेजान है--इसलिए कठिनाई है। अन्यथा, विचार से ज्यादा हवाई चीज और क्या हो सकती है?

चक्रों के खुलते समय पीड़ा स्वाभाविक

पीड़ा थोड़ी बढ़े, तो चिंतित मत होना। चक्र सक्रिय होते हैं, तो पीड़ा होती है। पीड़ा के कारण ध्यान को शिथिल न करना। वस्तुतः तो, चक्रों पर पीड़ा शुभ-लक्षण है। और, जैसे ही अनादि-काल से सुप्त चक्र पूर्णरूपेण सक्रिय हो उठेंगे, वैसे ही पीड़ा समाप्त हो जाएगी। चक्रों की पीड़ा--प्रसव पीड़ा है। तेरा ही नया जन्म होने को है। सौभाग्य मान और अनुगृहीत हो--क्योंकि स्वयं के जन्म को देखने से बड़ा और सदभाग्य नहीं है।

कुछ भी हो, ध्यान को नहीं रोकना

ध्यान में और भी शक्ति लगाओ। ध्यान के अतिरिक्त शेष समय में ध्यान की स्मृति (रिमेंबरिंग) बनाए रखो। जब भी स्मरण आए--क्षणभर को तत्काल भीतर डुबकी ले लो। मस्तिष्क में शीतलता और भी बढ़ेगी। उससे घबराना मत--बिल्कुल बर्फ जमी हुई मालूम होने लगे तो भी नहीं! रीढ़ में संवेदना गहरी होगी और कभी-कभी अनायास कहीं-कहीं दर्द भी उभरेगा। उसे साक्षी-भाव से देखते रहना है। वह आएगा और अपना काम करके विदा हो जाएगा। नए चक्र सक्रिय होते हैं तो दर्द होता ही है। और कुछ भी हो तो ध्यान को नहीं रोकना है। जो भी ध्यान से पैदा होता है, वह ध्यान से ही विदा हो जाता है।

मन का रेचन ध्यान में

भय न करो। ध्यान में जो भी हो होने दो। मन रेचन (केथार्सिस) में है तो उसे रोको मत। चित्त-शुद्धि का यही मार्ग है। अचेतन (अनकांशस) में जो भी दबा है, वह उभरेगा। उसे मार्ग दो ताकि उससे मुक्ति हो सके। उसे दबाया कि ध्यान व्यर्थ हुआ और उससे मुक्ति हुई नहीं कि ध्यान सार्थक हुआ। इसलिए, समस्त उभार का स्वागत करो। और उसे सहयोग भी दो। क्योंकि, अपने आप जो कार्य बहुत समय लेगा, वह सहयोग से अल्पकाल में ही हो जाता है।

छलांग--बाहर--शरीर के, संसार के, समय के

ध्यान में शरीर झूमता है तो भय न करना। वरन उसे आनंद से सहयोग देना। शरीर के साथ झूमो। मन को भी झूमने दो। और आत्मा को भी। झूमना नृत्य बन जाएगा। और नृत्य की अति में ही छलांग है। शरीर के बाहर--संसार के बाहर--समय के बाहर।

समय के पूर्व शक्ति का जागरण हानिप्रद

तृतीय नेत्र (थर्ड आई) की चिंता में तू न पड़। आवश्यक होगा तो मैं तुझसे
उस दिशा में कार्य करने को कहूंगा। वह तेरी संभावना के भीतर है और बिना ज्यादा श्रम के ही सक्रिय भी हो सकती है। लेकिन, तू स्वयं उत्सुकता न ले। समय के पूर्व शक्ति का जागरण बाधा भी बन सकता है। और मूल-साधना से भटकाव भी। फिर सत्य के साक्षात्कार के लिए वह आवश्यक भी नहीं है। और अनिवार्य तो बिल्कुल ही नहीं। कभी-कभी कुछ शक्तियां अनचाहे भी सक्रिय हो जाती हैं; लेकिन उनके प्रति भी उपेक्षा (इनडिफरेंस) आवश्यक है। और नए सोपान पर गतिमय होने में सहयोगी भी। अब, जब मैं तेरी चिंता करता हूं तो तू सब चिंताओं से सहज ही विश्राम ले सकती है।

पूर्व-जन्मों के बंद द्वारों का खुलना

हां--तुम विगत किसी जन्म में योग विवेक से संबंधित थीं। अब, बहुत सी बातें शीघ्र ही तुम्हें याद आ जाएंगी। क्योंकि, चाबी तुम्हारे हाथ में है। परंतु उनके बारे में कुछ भी मत सोचो। अन्यथा तुम्हारी कल्पना तुम्हारी स्मृतियों के साथ घुलमिल जाएगी और तब यह जानना बहुत मुश्किल होगा कि क्या वास्तविक है और क्या नहीं? इसलिए अब सतत जागरूक रहो कि तुम्हें पूर्व-जन्मों के बारे में नहीं सोचना है। स्मृतियों को अपने से आने दो। तुम्हारी ओर से किसी सचेतन प्रयास की आवश्यकता नहीं है। इसके विपरीत वह एक बड़ी बाधा ही बनेगा। अचेतन को अपना कार्य करने दो! तुम मात्र साक्षी रहो। और जैसे-जैसे ध्यान गहरा होगा, बहुत से बंद द्वार तुम्हारे समक्ष खुलेंगे। लेकिन प्रतीक्षा करना न भूलो और रहस्यों को स्वयं प्रकट होने दो। बीज टूट चुका है और बहुत कुछ होने को है। तुम मात्र प्रतीक्षा करो और साक्षी रहो।

साधना में धैर्य

साधना के जीवन में धैर्य सबसे बड़ी बात है। बीज को बोकर कितनी प्रतीक्षा करनी होती है। पहले तो श्रम व्यर्थ ही गया दिखता है। कुछ भी परिणाम आता हुआ प्रतीत नहीं होता। पर एक दिन प्रतीक्षा प्राप्ति में बदलती है। बीज फटकर पौधे के रूप में भूमि के बाहर आ जाता है। पर स्मरण रहे, जब कोई परिणाम नहीं दिख रहा था, तब भी भूमि के नीचे विकास हो रहा था। ठीक ऐसा ही साधक का जीवन है। जब कुछ भी नहीं दिख रहा होता, तब भी बहुत कुछ होता है। सच तो यह है कि--जीवन-शक्ति के समस्त विकास अदृश्य और अज्ञात होते हैं। विकास नहीं, केवल परिणाम दिखाई पड़ते हैं। साध्य की चिंता छोड़कर साधना करते चलें, फिर साध्य तो अपने आप आता चला जाता है। एक दिन आश्चर्य से भरकर ही देखना होता है कि यह क्या हो गया है! मैं क्या था और क्या हो गया हूं! तब

जो मिलता है उसके समक्ष उसे पाने के लिए किया गया श्रम नाकुछ मालूम होता है।

ध्यान में पूरा डूबना ही फल का जन्म है

जल्दी न करें। धैर्य रखें। धैर्य ध्यान के लिए खाद है। ध्यान को संभालते रहें। फल आएगा ही। आता ही है। लेकिन फल के लिए चिंतित न हों। क्योंकि वैसी चिंता ही फल के आने में बाधा बन जाती है। क्योंकि वैसी चिंता ही ध्यान से ध्यान को बंटा लेती है। ध्यान (मेडीटेशन) पूरा ध्यान (अटैन्शन) मांगता है। बंटाव नहीं चलेगा। आंशिकता नहीं चलेगी। ध्यान तुम्हारी समग्रता (टोटलिटी) के बिना संभव नहीं है। इसलिए, ध्यान के कर्म पर ही लगो और ध्यान के फल को प्रभु पर छोड़ो। और फल आ जाता है। क्योंकि ध्यान में पूरा डूबना ही फल का जन्म है।

अनुभूति में बुद्धि के प्रयास बाधक

ध्यान तेरा रोज गहरा हो रहा है, यह जानकर अति आनंदित हूं। बहुत से अनुभव होंगे--लेकिन उन्हें बुद्धि से समझने के प्रयास में मत पड़ना। बुद्धि के प्रयास बाधा बन जाते हैं। और न ही कोई अनुभव पुनरुक्त हो ऐसी वासना ही करना। क्योंकि, ऐसी वासना भी बाधा बन जाती है। जो हो उसके लिए बस प्रभु को धन्यवाद देकर आगे बढ़ जाना है।

समष्टि को बांट दिया ध्यान ही समाधि बन जाता है

ध्यान के बाद प्रार्थना किया कर कि ध्यान में मिली शांति और आनंद सब
ओर बिखर जाए--सबको मिल जाए। ध्यान करना है तुझे, लेकिन फल समष्टि को बांट देना है। तभी ध्यान समाधि बनता है।

ओशो ध्यान योग
अध्याय-2

प्रवचन-अंश

ध्यान है भीतर झांकना
बीज को स्वयं की संभावनाओं का कोई भी पता नहीं होता है। ऐसा ही मनुष्य
भी है। उसे भी पता नहीं है कि वह क्या है--क्या हो सकता है। लेकिन, बीज शायद स्वयं के भीतर झांक भी नहीं सकता है। पर मनुष्य तो झांक सकता है। यह झांकना ही ध्यान है। स्वयं के पूर्ण सत्य को अभी और यहीं, हियर एंड नाउ जानना ही ध्यान है। ध्यान में उतरें--गहरे और गहरे। गहराई के दर्पण में संभावनाओं का पूर्ण प्रतिफलन उपलब्ध हो जाता है। और जो हो सकता है, वह होना शुरू हो जाता है। जो संभव है, उसकी प्रतीति ही उसे वास्तविक बनाने लगती है। बीज जैसे ही संभावनाओं के स्वप्नों से आंदोलित होता है, वैसे ही अंकुरित होने लगता है। शक्ति, समय और संकल्प सभी ध्यान को समर्पित कर दें। क्योंकि ध्यान ही वह द्वार हीन द्वार है जो कि स्वयं को ही स्वयं से परिचित कराता है।

ध्यान है अमृत--ध्यान है जीवन
विवेक ही अंततः श्रद्धा के द्वार खोलता है। विवेकहीन श्रद्धा, श्रद्धा नहीं, मात्र आत्म-प्रवंचना है। ध्यान से विवेक जगेगा। वैसे ही जैसे सूर्य के आगमन से भोर में जगत जाग उठता है। ध्यान पर श्रम करें। क्योंकि अंततः शेष सब श्रम समय के मरुस्थल में कहां खो जाता है, पता ही नहीं पड़ता है। हाथ में बचती है केवल ध्यान की संपदा। और मृत्यु भी उसे नहीं छीन पाती है। क्योंकि मृत्यु का वश काल, टाइम के बाहर नहीं है। इसलिए तो मृत्यु को काल कहते हैं। ध्यान ले जाता है कालातीत में। समय और स्थान, स्पेस के बाहर। अर्थात अमृत में। काल, टाइम है विष। क्योंकि काल है जन्म; काल है मृत्यु। ध्यान है अमृत। क्योंकि ध्यान है जीवन। ध्यान पर श्रम, जीवन पर ही श्रम है। ध्यान की खोज, जीवन की ही खोज है।

ध्यान की अनुपस्थिति है मन
ध्यान के लिए श्रम करो। मन की सब समस्याएं तिरोहित हो जाएंगी। असल में तो मन ही समस्या है, माइंड इज दि प्रॉब्लम। शेष सारी समस्याएं तो मन की प्रतिध्वनियां मात्र हैं। एक-एक समस्या से अलग-अलग लड़ने से कुछ भी न होगा। प्रतिध्वनियों से संघर्ष व्यर्थ है। पराजय के अतिरिक्त उसका और कोई परिणाम नहीं है। शाखाओं को मत काटो। क्योंकि एक शाखा के स्थान पर चार शाखाएं पैदा हो जाएंगी। शाखाओं के काटने से वृक्ष और भी बढ़ता है। और समस्याएं शाखाएं हैं। काटना ही है तो जड़ को काटो। क्योंकि जड़ के कटने से शाखाएं अपने आप ही विदा हो जाती हैं।
और मन है जड़। इस जड़ को काटो ध्यान से। मन है समस्या। ध्यान है समाधान।
मन में समाधान नहीं है। ध्यान में समस्या नहीं है। क्योंकि मन में ध्यान नहीं है। क्योंकि ध्यान में मन नहीं है। ध्यान की अनुपस्थिति है मन। मन का अभाव है ध्यान। इसलिए कहता हूं--ध्यान के लिए श्रम करो।

मन का विसर्जन--साक्षीभाव से
मन के रहते शांति कहां? क्योंकि वस्तुतः मन ही अशांति है। इसलिए शांति की दिशा में मात्र विचार से, अध्ययन से, मनन से कुछ भी न होगा। विपरीत मन और सबल भी हो सकता है; क्योंकि वे सब मन की ही क्रियाएं हैं। हां, थोड़ी देर को विराम जरूर मिल सकता है; जो कि शांति नहीं, बस अशांति का विस्मरण मात्र है। इस विस्मरण की मादकता से सावधान रहना। शांति चाहिए तो मन को खोना पड़ेगा। मन की अनुपस्थिति ही शांति है। साक्षीभाव, विटनेसिंग से यही होगा। विचार, कर्म--सभी क्रियाओं के साक्षी बनो। कर्ता न रहो। साक्षी बनो। पल-पल साक्षी होकर जीयो। जो भी करो--साक्षी रहो। जैसे कि कोई और कर रहा है और मात्र गवाह रहा हो। फिर धीरे-धीरे मन भोजन न पाने से निर्बल होता जाता है। कर्ताभाव मन का भोजन है। अहंकार मन का ईंधन, (फ्यूल)

है। और जिस दिन ईंधन बिल्कुल नहीं मिलता है, उसी दिन मन ऐसे तिरोहित हो जाता है कि जैसे कभी रहा ही न हो।

सत्योपलब्धि के मार्ग अनंत हैं
सत्योपलब्धि के मार्ग अनंत हैं। और व्यक्ति-व्यक्ति पर निर्भर करता
है कि उसके लिए क्या उपयुक्त है। और इसलिए जो एक के लिए सही है, वही दूसरे के लिए बिल्कुल ही गलत हो सकता है। इसीलिए दूसरे के साथ धैर्य की आवश्यकता है। और स्वयं को सबके लिए मापदंड मानना खतरनाक है। मैं अनेकांत या स्यादवाद में इसी सत्य की अभिव्यक्ति देखता हूं। विचार-प्रधान व्यक्ति के लिए जो मार्ग है, वह भाव-प्रधान व्यक्ति के लिए नहीं है। और बहिर्मुखी, एक्स्ट्रोवर्ट के लिए जो द्वार है, वह अंतर्मुखी, इन्ट्रोवर्ट के लिए दीवार है। ज्ञान का यात्री अंततः ध्यान की नाव बनाता है। प्रेम का यात्री प्रार्थना को। ध्यान और प्रार्थना पहुंचते हैं एक ही मंजिल पर। लेकिन उनके यात्रा-पथ नितांत भिन्न हैं। और उचित यही है कि अपना यात्रा-पथ चुनें, और दूसरे की चिंता न करें। क्योंकि स्वयं को ही समझना जब इतना कठिन है, तो दूसरे को समझना तो करीब-करीब असंभव है।

सब मार्ग ध्यान के ही विविध रूप हैं
ध्यान के अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं है। या जो भी मार्ग हैं, वे सब ध्यान, मेडीटेशन के रूप हैं। प्रार्थना भी ध्यान है, पूजा भी, उपासना भी। योग भी ध्यान है, सांख्य भी। ज्ञान भी ध्यान है, भक्ति भी। कर्म भी ध्यान है, संन्यास भी। ध्यान का अर्थ है--चित्त की मौन, निर्विचार, शुद्धावस्था। कैसे पाते हो इस अवस्था को, यह महत्वपूर्ण नहीं है। बस पा लो, यही महत्वपूर्ण है। किस चिकित्सा-पद्धति से स्वस्थ होते हो, यह गौण है। बस स्वस्थ हो जाओ, यही महत्वपूर्ण है।

ओशो ध्यान योग
अध्याय 3

ध्यान--एक वैज्ञानिक दृष्टि

मेरे प्रिय आत्मन्!
सुना है मैंने, कोई नाव उलट गई थी। एक व्यक्ति उस नाव में बच गया और एक निर्जन द्वीप पर जा लगा। दिन, दो दिन, चार दिन; सप्ताह, दो सप्ताह उसने प्रतीक्षा की कि जिस बड़ी दुनिया का वह निवासी था, वहां से कोई उसे बचाने आ जाएगा। फिर महीने भी बीत गए और वर्ष भी बीतने लगा। फिर किसी को आते न देखकर वह धीरे-धीरे प्रतीक्षा करना भी भूल गया। पांच वर्षों के बाद कोई जहाज वहां से गुजरा, उस एकांत निर्जन द्वीप पर उस आदमी को निकालने के लिए जहाज ने लोगों को उतारा। और जब उन लोगों ने उस खो गए आदमी को वापस चलने को कहा, तो वह विचार में पड़ गया।
उन लोगों ने कहा, "क्या विचार कर रहे हैं, चलना है या नहीं?" तो उस आदमी
ने कहा, "अगर तुम्हारे साथ जहाज पर कुछ अखबार हों जो तुम्हारी दुनिया की खबर लाए हों, तो मैं पिछले दिनों के कुछ अखबार देख लेना चाहता हूं।" अखबार देखकर उसने कहा, "तुम अपनी दुनिया सम्हालो और अखबार भी, और मैं जाने से इनकार करता हूं।"
बहुत हैरान हुए वे लोग। उनकी हैरानी स्वाभाविक थी। पर वह आदमी कहने लगा, इन पांच वर्षों में मैंने जिस शांति, जिस मौन और जिस आनंद को अनुभव किया है, वह मैंने पूरे जीवन के पचास वर्षों में तुम्हारी उस बड़ी दुनिया में कभी अनुभव नहीं किया था। और सौभाग्य, और परमात्मा की अनुकंपा कि उस दिन तूफान में नाव उलट गयी और मैं इस द्वीप पर आ लगा। यदि मैं अभी इस द्वीप पर न लगा होता, तो शायद मुझे पता भी न चलता कि मैं किस बड़े पागलखाने में पचास वर्षों से जी रहा था!
हम उस बड़े पागलखाने के हिस्से हैं; उसमें ही पैदा होते हैं, उसमें ही बड़े होते हैं, उसमें ही जीते हैं--और इसलिए कभी पता भी नहीं चल पाता कि जीवन में जो भी पाने योग्य है, वह सभी हमारे हाथ से चूक गया है। और जिसे हम सुख कहते हैं और जिसे हम शांति कहते हैं, उसका न तो सुख से कोई संबंध है और न शांति से कोई संबंध है। और जिसे हम जीवन कहते हैं, शायद वह मौत से किसी भी हालत में बेहतर नहीं है।
लेकिन परिचय कठिन है। चारों ओर एक शोरगुल की दुनिया है। चारों ओर शब्दों का, शोरगुल का उपद्रवग्रस्त वातावरण है। उस सारे वातावरण में हम वे रास्ते ही भूल जाते हैं, जो भीतर मौन और शांति में ले जा सकते हैं।
इस देश में--और इस देश के बाहर भी--कुछ लोगों ने अपने भीतर भी एकांत द्वीप की खोज कर ली है। न तो यह संभव है कि सभी की नावें डूब जाएं; न यह संभव है कि इतने तूफान उठें; और न यह संभव है कि इतने निर्जन द्वीप मिल जाएं, जहां सारे लोग शांति और मौन को अनुभव कर सकें। लेकिन, फिर भी यह संभव है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने भीतर ही उस निर्जन द्वीप को खोज ले।
ध्यान अपने ही भीतर उस निर्जन द्वीप की खोज का मार्ग है।
इस ध्यान के विज्ञान के संबंध में दो-तीन बातें आपसे कहना चाहूंगा।
पहली बात तो यह कि साधारणतः जब हम बोलते हैं, तभी हमें पता चलता है कि हमारे भीतर कौन से विचार चलते थे। ध्यान का विज्ञान इस स्थिति को अत्यंत ऊपरी अवस्था मानता है। अगर एक आदमी न बोले, तो हम पहचान भी न पाएं कि वह कौन है, क्या है।
शब्द हमारे बाहर प्रकट होता है, तभी हमें पता चलता है--हमारे भीतर क्या था। ध्यान का विज्ञान कहता है, यह अवस्था सबसे ऊपरी अवस्था है चित्त की; सरफेस है, ऊपर की पर्त है। हम नहीं बोले होते हैं, तब भी पहले उसके विचार भीतर चलता है; अन्यथा हम बोलेंगे कैसे? अगर मैं कहता हूं ओम--तो इसके पहले कि मैंने कहा--मेरे भीतर, ओठों के पार, मेरे हृदय के किसी कोने में ओम का निर्माण हो जाता है। ध्यान कहता है, यह दूसरी पर्त है व्यक्तित्व की गहराई की।
साधारणतः आदमी ऊपर की पर्त पर ही जीता है, उसे दूसरी पर्त का भी पता नहीं होता। उसके बोलने की दुनिया के नीचे भी एक सोचने का जगत है, उसका भी

उसे कुछ पता नहीं होता। काश, हमें हमारे सोचने के जगत का पता चल जाए, तो हम बहुत हैरान हो जाएं। जितना हम सोचते हैं, उसका बहुत थोड़ा सा हिस्सा वाणी में प्रकट होता है। ठीक ऐसे ही, जैसे एक बर्फ के टुकड़े को हम पानी में डाल दें, तो एक हिस्सा ऊपर हो और नौ हिस्सा नीचे डूब जाए। हमारा भी नौ हिस्सा जीवन का, विचार का तल नीचे डूबा रहता है; एक हिस्सा ऊपर दिखाई पड़ता है। इसलिए अक्सर ऐसा हो जाता है कि आप क्रोध कर चुकते हैं, तब आप कहते हैं
कि यह कैसे संभव हुआ कि मैंने क्रोध किया? एक आदमी हत्या कर देता है, फिर पछताता है कि यह कैसे संभव हुआ कि मैंने हत्या की! इनस्पाइट ऑफ मी--वह कहता है, मेरे बावजूद यह हो गया, मैंने तो कभी ऐसा करना ही नहीं चाहा था। उसे पता नहीं कि हत्या आकस्मिक नहीं है, पहले भीतर निर्मित होती है। लेकिन वह तल गहरा है, और उस तल से हमारा कोई संबंध नहीं रह गया।
ध्यान का विज्ञान कहता है कि पहला तल बोलने का है, दूसरा तल सोचने का है, तीसरा तल दर्शन का है। पश्यंति का अर्थ है--देखना; जहां शब्द देखे जाते हैं। मोहम्मद कहते हैं, मैंने कुरान देखी, सुनी नहीं। वेद के ऋषि कहते हैं, हमने ज्ञान देखा, सुना नहीं। मूसा कहते हैं, मेरे सामने टेन कमांडमेंट्स प्रकट हुए, दिखाई पड़े, मैंने सुने नहीं। यह तीसरे तल की बात है, जहां विचार दिखाई पड़ते हैं, सुनाई नहीं पड़ते हैं।
तीसरा तल भी ध्यान के हिसाब से मन का आखिरी तल नहीं है। चौथा एक तल है, जिसे ध्यान का विज्ञान परा कहता है। वहां विचार दिखाई भी नहीं पड़ते, सुनाई भी नहीं पड़ते। और जब कोई व्यक्ति देखने और सुनने से नीचे उतर जाता है, तब उसे चौथे तल का पता चलता है। और उस चौथे तल के पार जो जगत है, वह ध्यान का जगत है।
ये चार हमारी पर्तें हैं। इन चार दीवारों के भीतर हमारी आत्मा है। हम बाहर के परकोटे की दीवार के बाहर ही जीते हैं। पूरे जीवन शब्दों की पर्त के साथ जीते हैं--और स्मरण नहीं आता कि खजाने बाहर नहीं हैं, बाहर सिर्फ रास्तों की धूल है। आनंद बाहर नहीं है, बाहर आनंद की धुन भी सुनाई पड़ जाए तो बहुत। जीवन का सब-कुछ भीतर है--जड़ों में, गहरे अंधेरे में दबा हुआ। ध्यान वहां तक पहुंचने का मार्ग है।
पृथ्वी पर बहुत से रास्तों से उस पांचवीं स्थिति में पहुंचने की कोशिश की जाती रही है। और जो व्यक्ति इन चार स्थितियों को पार करके पांचवीं गहराई में नहीं डूब पाता, उस व्यक्ति को जीवन तो मिला, लेकिन जीवन को जानने की उसने कोई कोशिश नहीं की। उस व्यक्ति को खजाने तो मिले, लेकिन खजानों से वह अपरिचित रहा और रास्तों पर भीख मांगने में उसने समय बिताया। उस व्यक्ति के पास वीणा तो थी, जिससे संगीत पैदा हो सकता था; लेकिन उसने उसे कभी छुआ नहीं, उसकी अंगुलियों का कभी कोई स्पर्श उसकी वीणा तक नहीं पहुंचा।
हम जिसे सुख कहते हैं, धर्म उसे सुख नहीं कहता। है भी नहीं, हम भलीभांति जानते हैं। जिसे हम सुख कहते हैं, वह थोड़ी सी देर के लिए किसी तनाव से मुक्ति है। नकारात्मक है, निगेटिव है।
एक आदमी थोड़ी देर के लिए श्राब पी लेता है, और सोचता है सुख में है! एक आदमी थोड़ी देर के लिए सेक्स में उतर जाता है, और सोचता है सुख में है! एक आदमी थोड़ी देर के लिए संगीत सुन लेता है, और सोचता है कि सुख में है! एक आदमी बैठकर गपशप कर लेता है, हंसी-मजाक कर लेता है, हंस लेता है, और सोचता है कि सुख में है!
ये सारे सुख तंग जूते को सांझ उतारने से भिन्न नहीं हैं, उनका सुख से कोई संबंध नहीं है। सुख एक पॉजिटिव, एक विधायक स्थिति है--नकारात्मक नहीं। सुख छींक जैसी चीज नहीं है कि आपको छींक आ जाती है, और पीछे थोड़ी राहत मिलती है! क्योंकि छींक परेशान कर रही थी। वह एक नकारात्मक चीज नहीं है कि एक बोझ मन से उतर जाता है, और पीछे अच्छा लगता है।
सुख एक विधायक अनुभव है। लेकिन बिना ध्यान के वैसा विधायक सुख किसी
को अनुभव नहीं होता। और जैसे-जैसे आदमी सभ्य और शिक्षित हुआ है, वैसे-वैसे ध्यान से दूर हुआ है। सारी शिक्षा, सारी सभ्यता--आदमी को दूसरों से कैसे संबंधित हों, यह तो सिखा देती है; लेकिन अपने से कैसे संबंधित हों, यह नहीं सिखाती।

समाज आपको एक फंक्श्न से ज्यादा नहीं मानता। अच्छे दुकानदार हों, अच्छे नौकर हों, अच्छे पति हों, अच्छी मां हों, अच्छी पत्नी हों--बात समाप्त हो गयी; आपसे समाज को कोई लेना-देना नहीं है। इसलिए समाज की सारी शिक्षा उपयोगितावादी है, यूटिलिटेरियन है। समाज सारी शिक्षा ऐसी देता है, जिससे कुछ पैदा होता हो। आनंद से कुछ भी पैदा होता नहीं दिखाई पड़ता। आनंद कोई कमोडिटी नहीं है, जो बाजार में बिक सके। आनंद कोई ऐसी चीज नहीं है, जिसे रुपए में भंजाया जा सके। आनंद कोई ऐसी चीज नहीं है, जिसे बैंक-बैलेंस में जमा किया जा सके। आनंद कोई ऐसी चीज नहीं है, जिसकी बाजार में कोई कीमत हो सके। इसलिए समाज को आनंद से कोई प्रयोजन नहीं है। और कठिनाई यही है कि आनंद भर एक ऐसी चीज है, जो व्यक्ति के लिए मूल्यवान है; बाकी कुछ भी मूल्यवान नहीं है। लेकिन जैसे-जैसे आदमी सभ्य होता जाता है, यूटिलिटेरियन होता जाता है--सब चीजों की उपयोगिता होनी चाहिए।
मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं, "ध्यान से क्या मिलेगा?" शायद वे सोचते होंगे--रुपए मिलें, मकान मिले, कोई पद मिले। ध्यान से न पद मिलेगा, न रुपए मिलेंगे, न मकान मिलेगा; ध्यान की कोई उपयोगिता नहीं है।
लेकिन जो आदमी सिर्फ उपयोगी चीजों की तलाश में घूम रहा है, वह आदमी सिर्फ मौत की तलाश में घूम रहा है। जीवन की भी कोई उपयोगिता नहीं है। जीवन में जो भी महत्वपूर्ण है, वह परपज़लेस है। जीवन में जो भी महत्वपूर्ण है, उसकी बाजार में कोई कीमत नहीं है। प्रेम की कोई कीमत है बाजार में? कोई कीमत नहीं है। आनंद की कोई कीमत है? कोई कीमत नहीं है। प्रार्थना की कोई कीमत है? कोई कीमत नहीं है। ध्यान की, परमात्मा की? इनकी कोई भी कीमत नहीं है। लेकिन जिस जिंदगी में अनुपयोगी, नॉन-यूटिलिटेरियन मार्ग नहीं होता, उस जिंदगी में सितारों की चमक भी खो जाती है, उस जिंदगी में फूलों की सुगंध भी खो जाती है, उस जिंदगी में पक्षियों के गीत भी खो जाते हैं, उस जिंदगी में नदियों की दौड़ती हुई गति भी खो जाती है; उस जिंदगी में कुछ भी नहीं बचता, सिर्फ बाजार बचता है। उस जिंदगी में काम के सिवाय कुछ भी नहीं बचता। उस जिंदगी में तनाव और परेशानी और चिंताओं के सिवाय कुछ भी नहीं बचता। और जिंदगी चिंताओं का एक जोड़ नहीं है। लेकिन हमारी जिंदगी चिंताओं का एक जोड़ है!
ध्यान हमारी जिंदगी में उस डायमेंशन, उस आयाम की खोज है, जहां हम बिना प्रयोजन के--सिर्फ होने-मात्र में, जस्ट टु बी--होने-मात्र से आनंदित होते हैं। और जब भी हमारे जीवन में कहीं से भी सुख की कोई किरण उतरती है, तो वे वे ही क्षण होते हैं, जब हम खाली, बिना काम के--समुद्र के तट पर, या किसी पर्वत की ओट में, या रात आकाश के तारों के नीचे, या सुबह उगते सूरज के साथ, या आकाश में उड़ते हुए पक्षियों के पीछे, या खिले हुए फूलों के पास--कभी जब हम बिना काम, बिल्कुल बेकाम, बिल्कुल व्यर्थ, बाजार में जिसकी कोई कीमत न होगी--ऐसे किसी क्षण में होते हैं, तभी हमारे जीवन में सुख की थोड़ी सी ध्वनि उतरती है। लेकिन यह आकस्मिक, एक्सिडेंटल होती है। ध्यान, व्यवस्थित रूप से इस किरण की खोज है।
मेरे देखे, ध्यान से ज्यादा बिना कीमत की कोई चीज नहीं है। और ध्यान
से ज्यादा बहुमूल्य भी कोई चीज नहीं है। और आश्चर्य की बात यह है कि यह जो ध्यान, प्रार्थना, या हम और कोई नाम दें--यह इतनी कठिन बात नहीं है, जितना लोग सोचते हैं। कठिनाई अपरिचय की है। कठिनाई न जानने के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। जैसे हमारे घर के किनारे पर ही कोई फूल खिला हो, और हमने खिड़की न खोली हो; जैसे बाहर सूरज खड़ा हो, और हमारे द्वार बंद हों; जैसे खजाना सामने पड़ा हो, और हम आंख बंद किए बैठे हों--ऐसी कठिनाई है। अपने ही हाथ से अपरिचय के कारण कुछ हम खोए हुए बैठे हैं, जो हमारा किसी भी क्षण हो सकता है।
ध्यान प्रत्येक व्यक्ति की क्षमता है। क्षमता ही नहीं, प्रत्येक व्यक्ति का अधिकार भी। परमात्मा जिस दिन व्यक्ति को पैदा करता है, ध्यान के साथ ही पैदा करता है। ध्यान हमारा स्वभाव है। उसे हम जन्म के साथ लेकर पैदा होते हैं। इसलिए ध्यान से परिचित होना कठिन नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति ध्यान में प्रविष्ट हो सकता है।

ओशो ध्यान योग
अध्याय 4

विभिन्न ध्यान प्रयोग

सक्रिय ध्यान

हमारे शरीर और मन में इकट्ठे हो गए दमित आवेगों, तनावों एवं रुग्णताओं का रेचन करने, अर्थात उन्हें बाहर निकाल फेंकने के लिए ओशो ने इस नई ध्यान विधि का सृजन किया है। शरीर और मन के इस रेचन अर्थात शुद्धिकरण से, साधक पुनः अपनी देह-ऊर्जा, प्राण-ऊर्जा, एवं आत्म-ऊर्जा के संपर्क में--उनकी पूर्ण संभावनाओं के संपर्क में आ जाता है--और इस तरह साधक आध्यात्मिक जागरण की ओर सरलता से विकसित हो पाता है।
सक्रिय ध्यान अकेले भी किया जा सकता है और समूह में भी। लेकिन समूह में करना ही अधिक परिणामकारी है।
स्नान कर के, खाली पेट, कम से कम वस्त्रों में, आंखों पर पट्टी बांधकर इसे करना चाहिए।
यह विधि पूरी तरह प्रभावकारी हो सके, इसके लिए साधक को अपनी पूरी शक्ति से, समग्रता में इसका अभ्यास करना होगा। इसमें पांच चरण हैं। पहले तीन चरण दस-दस मिनट के हैं तथा बाकी दो पंद्रह-पंद्रह मिनट के।
सुबह का समय इसके लिए सर्वाधिक उपयोगी है, यूं इसे सांझ के समय भी किया जा सकता है।
पहला चरण
अपनी पूरी शक्ति से तेज और गहरी श्वास लेना शुरू करें। श्वास बिना किसी नियम के, अराजकतापूर्वक--भीतर लें, बाहर छोड़ें। श्वास नाक से लें। श्वास बाहर फेंकने पर अधिक जोर लगाएं, इससे श्वास का भीतर आना सहज हो जाएगा। श्वास का लेना और छोड़ना खूब तीव्रता से और जल्दी-जल्दी करें--और अपनी पूरी ताकत इसमें लगा दें। इसे बढ़ाते ही चले जाएं--आपका पूरा व्यक्तित्व एक तेज श्वास-प्रश्वास ही बन जाए। भीतर ध्यानपूर्वक देखते रहें--श्वास आयी, श्वास गयी।
दूसरा चरण
अब पूरी तरह शरीर को गति करने दें तथा आंतरिक भावावेगों को प्रकट होने दें। भीतर से जो कुछ बाहर निकलता हो, उसे बाहर निकलने में सहयोग करें। पूरी तरह से पागल हो जाएं--रोएं, चीखें, चिल्लाएं, नाचें, उछलें, कूदें, हंसें--जो भी होता हो उसे सहयोग करें, उसे तीव्रता दें। चाहें तो तेज और गहरी सांस लेना जारी रख सकते हैं। यदि शरीर की गति और भावों का रेचन और प्रकटीकरण न होता हो, तो चीखना, चिल्लाना, रोना, हंसना इत्यादि में से किसी एक को चुन लें और उसे करना शुरू करें। शीघ्र ही आपके स्वयं के भीतर के संगृहीत और दमित आवेगों का झरना फूट पड़ेगा।
ख्याल रखें कि आपका मन और आपकी बुद्धि इस प्रक्रिया में बाधक न बने। यदि फिर भी कुछ न होता हो, तो श्वास की चोट जारी रखें और किसी आंतरिक अभिव्यक्ति को प्रकट होने में सहयोग करें।
तीसरा चरण
अब दोनों बाजू ऊपर उठा लें, पंजों पर खड़े हो जाएं, और एक ही जगह पर उछलते हुए, समग्रता से, पूरी ताकत से महामंत्र हू-हू-हू का उच्चार करें, और उसकी चोट को काम केंद्र पर पड़ने दें। ऊर्जा के बढ़ते हुए प्रवाह को अनुभव करें। "हू" की चोट को और अधिक तीव्र करते चले जाएं--तथा आनंदपूर्वक इस चरण को तीव्रता के शिखर की ओर ले चलें।
चौथा चरण
अचानक सारी गतियां, क्रियाएं और हू-हू-हू की आवाज आदि सब बंद कर दें और शरीर जिस स्थिति में हो, उसे वहीं थिर कर लें। शरीर को किसी भी प्रकार से व्यवस्थित न करें। पूरी तरह से निष्क्रिय और सजग बने रहें। एक गहरी शांति, मौन और शून्यता भीतर घटित होगी।
पांचवां चरण

अब भीतर छा गए आनंद, मौन और शांति को अभिव्यक्त करें। आनंद और अहोभाव
से भरकर नाचें, गाएं और उत्सव मनाएं। शरीर के रोएं-रोएं से भीतर की जीवन-ऊर्जा और चैतन्य को प्रकट होने दें।
ध्यान रहे, यदि आप ऐसी जगह ध्यान कर रहे हों, जहां पहले तथा दूसरे चरण में भावावेगों के प्रकटीकरण तथा तीसरे चरण में हू-हू-हू की आवाज करने की सुविधा न हो, तो दूसरे चरण में रेचन-क्रिया शरीरिक मुद्राओं द्वारा ही होने दें--तथा तीसरे चरण में "हू" की आवाज बाहर न करके भीतर ही भीतर करें। लेकिन आवाज करना अधिक श्रेयस्कर है, क्योंकि तब ध्यान अधिक गहरा हो जाता है।

कुंडलिनी ध्यान

यह एक अदभुत ध्यान-पद्धति है और इसके जरिए मस्तिष्क से हृदय में उतर आना आसान हो जाता है।
एक घंटे के इस ध्यान में पंद्रह-पंद्रह मिनट के चार चरण हैं। पहले और दूसरे चरण में आंखें खुली रखी जा सकती हैं। लेकिन तीसरे और चौथे चरण में आंखें बंद रखनी हैं। सांझ इसके लिए सर्वाधिक उपयुक्त समय है।
पहले चरण की संगति सपेरे के बीन-स्वर के साथ बिठायी गयी है। जैसे बीन-स्वर पर जैसे सर्प अपनी कुंडलिनी तोड़कर उठता है, और फन निकालकर नाचने लगता है, वैसे ही इस ध्यान के सम्यक प्रयोग पर साधक की सोई हुई कुंडलिनी शक्ति जाग उठती है।
पहला चरण
शरीर को बिल्कुल ढीला छोड़ दें और पूरे शरीर को कंपाएं, शेक करें। अनुभव करें कि ऊर्जा पांव से उठकर ऊपर की ओर बढ़ रही है।
दूसरा चरण
संगीत की लय पर नाचें--जैसा आपको भाए--और शरीर को, जैसा वह चाहे, गति करने दें।
तीसरा चरण
बैठ जाएं या खड़े रहें, लेकिन सीधे और निश्चल। संगीत को सुनें।
चौथा चरण
निष्क्रिय होकर लेट जाएं और शांत व साक्षी बने रहें।

नटराज ध्यान

नटराज ध्यान के संबंध में बोलते हुए ओशो ने कहा है--परमात्मा को हमने नटराज की भांति सोचा है। हमने शिव की एक प्रतिमा भी बनाई है नटराज के रूप में। परमात्मा नर्तक की भांति है, एक कवि या चित्रकार की भांति नहीं। एक कविता या पेंटिंग बनकर कवि से, पेंटर से अलग हो जाती है; लेकिन नृत्य को नर्तक से अलग नहीं किया जा सकता। उनका अस्तित्व एक साथ है; कहना चाहिए एक है।
नृत्य और नर्तक एक हैं। नृत्य के रुकते ही नर्तक भी विदा हो जाता है। संपूर्ण अस्तित्व ही परमात्मा का नृत्य है; अणु-परमाणु नृत्य में लीन है। परमात्म-ऊर्जा अनंत-अनंत रूपों में, अनंत-अनंत भाव-भंगिमाओं में नृत्य कर रही है।
नटराज-नृत्य एक संपूर्ण ध्यान है। नृत्य में डूबकर व्यक्ति विसर्जित
हो जाता है और अस्तित्व का नृत्य ही शेष रह जाता है। हृदयपूर्वक पागल होकर नाचने में जीवन रूपांतरण की कुंजी है।
नटराज ध्यान पैंसठ मिनट का है और इसके तीन चरण हैं। पहला चरण चालीस, दूसरा चरण बीस और तीसरा चरण पांच मिनट का है।
जिस समय आप चाहें, इसे कर सकते हैं।

पहला चरण
संगीत की लय के साथ-साथ नाचें और नाचें, बस नाचें, पूरे अचेतन को उभरकर नृत्य में प्रवेश करने दें। ऐसे नाचें कि नृत्य के वशीभूत हो जाएं। कोई

योजना न करें, और न ही नृत्य को नियंत्रित करें। नृत्य में साक्षी को, द्रष्टा को, बोध को--सबको भूल जाएं। नृत्य में पूरी तरह डूब जाएं, खो जाएं, समा जाएं--बस, नृत्य ही हो जाएं।
काम केंद्र से शुरू होकर ऊर्जा ऊपर की ओर गति करेगी।

दूसरा चरण
वाद्य-संगीत के बंद होते ही नाचना रोक दें और लेट जाएं। अब नृत्य एवं संगीत से पैदा हुई सिहरन को अपने सूक्ष्म तलों तक प्रवेश करने दें।

तीसरा चरण
खड़े हो जाएं। पुनः पांच मिनट नाचकर उत्सव मनाएं--प्रमुदित हों।

नादब्रह्म ध्यान

तिब्बत देश की यह बहुत पुरानी विधि है। बड़े भोर में, दो और चार बजे के बीच उठकर, साधक इस विधि का अभ्यास करते थे और फिर सो जाते थे। ओशो का कहना है कि हम लोग नादब्रह्म ध्यान सोने के पूर्व मध्य-रात्रि में करें या फिर प्रातःकाल के समय करें।
ध्यान रहे कि रात के अतिरिक्त जब भी इसे किया जाए, तब अंत में पंद्रह मिनट का विश्राम अनिवार्य है।
नादब्रह्म ध्यान, सामूहिक और व्यक्तिगत दोनों ढंग से किया जा सकता है। पेट भरे रहने पर यह ध्यान नहीं करना चाहिए, क्योंकि तब आंतरिक नाद गहरा नहीं जाएगा। यदि इसे अकेले करें तो कान में रुई या डाट लगाना उपयोगी होगा।
यह ध्यान तीन चरणों का है। पहला चरण तीस मिनट का है, और दूसरा तथा तीसरा पंद्रह-पंद्रह मिनट का। आंखें पूरे समय बंद रहेंगी।

पहला चरण
आंखें बंद कर सुखपूर्वक बैठ जाएं। अब मुंह को बंद रखते हुए, भीतर ही भीतर, भंवरे की गुंजार की भांति हूं ऊं ऊं ऊं ऊं का नाद शुरू करें। यह नाद इतने जोर से शुरू करें कि इसका कंपन आपको पूरे शरीर में अनुभव हो। नाद इतना ऊंचा हो कि आसपास के लोग इसे सुन सकें। नाद के स्वर-मान में आप बदलाहट भी कर सकते हैं। अपने ढंग से गुंजार करें। फिर श्वास भीतर ले जाएं।
अगर शरीर हिलना चाहे तो उसे हिलने दें, लेकिन गति अत्यंत धीमी और प्रसादपूर्ण हो। नाद करते हुए भाव करें कि आपका शरीर बांस की खाली पोंगरी है--जो सिर्फ गुंजार के कंपनों से भरी है। कुछ समय के बाद वह बिंदु आएगा, जब आप श्रोता भर रहेंगे और नाद आप ही आप गूंजता रहेगा।
यह नाद मस्तिष्क के एक-एक तंतु को शुद्ध कर उन्हें सक्रिय करता है तथा प्रभु-चिकित्सा में विशेष लाभकारी है।
इसे तीस मिनट से अधिक तो कर सकते हैं, लेकिन कम नहीं।

दूसरा चरण
अब दोनों हाथों को अपने सामने नाभि के पास रखें और हथेलियों को आकाशोन्मुख ऊपर की ओर। अब दोनों हाथों को आगे की तरफ ले जाते हुए चक्राकार घुमाएं। दायां हाथ दायीं तरफ को जाएगा और बायां हाथ बायीं तरफ को। और तब वर्तुल पूरे करते हुए दोनों हाथों को अपने सामने उसी स्थान पर वापस ले आएं।
ध्यान रहे कि जितना हो सके हाथों के घूमने की गति धीमी से धीमी रखनी है। वह इतनी धीमी रहे कि लगे कि जैसे गति ही नहीं हो रही है।
शरीर हिलना चाहे तो उसे हिलने दें, लेकिन उसकी गति भी बहुत धीमी, मृदु
और प्रसादपूर्ण हो। और भाव करें कि ऊर्जा आप से बाहर जा रही है। यह क्रम साढ़े सात मिनट तक चलेगा।
इसके बाद हथेलियों को नीचे की ओर, जमीन की ओर उलट दें और हाथों को विपरीत दिशा में घुमाना शुरू करें।

पहले तो सामने रखे हुए हाथों को अपने शरीर की तरफ आने दें और फिर उसी प्रकार दाएं हाथ को दायीं तरफ तथा बाएं हाथ को बायीं तरफ वर्तुलाकार गति करने दें--जब तक कि वे वापस उसी स्थान पर सामने न आ जाएं।
घूमने के लिए हाथों को अपने आप न छोड़ें, बल्कि इसी वर्तुलाकार ढांचे में धीरे-धीरे उन्हें घुमाते रहें। और भाव करें कि आप ऊर्जा ग्रहण कर रहे हैं, ऊर्जा आपकी ओर आ रही है। यह क्रम भी साढ़े सात मिनट तक चलेगा।

तीसरा चरण
बिल्कुल शांत और स्थिर बैठे रहें--साक्षी होकर।

ओशो ने दंपतियों के लिए नादब्रह्म ध्यान की एक अन्य विधि भी बतायी है,
जो इस प्रकार है--
पहले कमरे को ठीक से अंधेरा कर मोमबत्ती जला लें। विशेष सुगंध वाली अगरबत्ती ही जलाएं, जिसे सिर्फ इस ध्यान के समय ही हमेशा उपयोग में लाएं। फिर दोनों अपना शरीर एक चादर से ढंक लें। बेहतर यही होगा कि दोनों के शरीर पर कोई और वस्त्र न हो। अब एक-दूसरे का तिरछे ढंग से हाथ पकड़ आमने-सामने बैठ जाएं। अब आंखें बंद कर लें और कम से कम तीस मिनट तक लगातार भंवरे की भांति हूं ऊं ऊं ऊं ऊं का गुंजार करते रहें। गुंजार दोनों एक साथ करें। एक या दो मिनट के बाद दोनों की श्वसन क्रिया और गुंजार एक-दूसरे में घुलमिल जाएंगी और दो ऊर्जाओं के मिलन की दोनों को प्रतीति होगी।
रात्रि, सोने के पूर्व इसे करें।

विपश्यना ध्यान

यह ध्यान विधि भगवान बुद्ध की अमूल्य देन है। ढाई हजार वर्षों के बाद
भी उसकी महिमा में, उसकी गरिमा में जरा भी कमी नहीं हुई। और ओशो का मानना है कि आधुनिक मनुष्य की अंतर्यात्रा की साधना में विपश्यना सर्वाधिक कारगर सिद्ध हो सकती है।
विपश्यना का अर्थ है--अंतर्दर्शन यानी भीतर देखना।
यह ध्यान पचास मिनट का है और बैठकर करना है। बैठें, शरीर और मन को तनाव
न दें और आंखें बंद रखें। फिर अपने ध्यान को आती-जाती श्वास पर केंद्रित करें। श्वास को किसी तरह की व्यवस्था नहीं देनी है; उसे उसके सहज ढंग में चलने दें। सिर्फ ध्यान को उसकी यात्रा के साथ कर दें।
श्वास की यात्रा में नाभि-केंद्र के पास कोई जगह है, जहां श्वास अधिक महसूस होती है। वहां विशेष ध्यान दें। अगर बीच में ध्यान कहीं चला जाए तो उससे घबराएं न। अगर मन में कोई विचार या भाव उठे तो उसे भी सुन लें, लेकिन फिर-फिर प्रेमपूर्वक ध्यान को श्वास पर लाएं। और नींद से बचें।

गौरीशंकर ध्यान

घंटेभर के इस ध्यान में चार चरण हैं और प्रत्येक चरण पंद्रह मिनट का है।
पहले चरण को ठीक से करने पर आपके रक्त प्रवाह में कार्बन-डाय-आक्साइड
का तल इतना ऊंचा हो जाएगा कि आप अपने को गौरीशंकर--एवरेस्ट शिखर पर महसूस करेंगे। वह आपको इतना ऊपर उठा देगा।
इस ध्यान प्रयोग के दूसरे चरण में साधकों के सामने प्रकाश का एक बल्ब तेजी से सतत जलता-बुझता रहता है।

पहला चरण
आंखें बंद कर बैठ जाएं। अब नाक से उतनी गहरी श्वास भीतर लें, जितनी ले सकते हैं। और इस श्वास को भीतर तब तक रोके रहें, जब तक ऐसा न लगने लगे कि अब अधिक नहीं रोका जा सकता। फिर धीरे-धीरे श्वास को मुंह से बाहर निकाल दें। और फिर तब तक भीतर जाने वाली श्वास न लें, जब तक लेना मजबूरी न हो जाए। यह क्रम पंद्रह मिनट तक जारी रखें।

दूसरा चरण
श्वसन-क्रिया को सामान्य हो जाने दें। आंखें खोल लें और सतत जलते- बुझते हुए तेज प्रकाश को धीमे-धीमे देखते रहें। दृष्टि को तनाव नहीं देना है। और शरीर को पूरी तरह स्थिर रखें।

तीसरा चरण
खड़े हो जाएं, आंखें बंद कर लें और शरीर को लातिहान के ढंग से धीरे-धीरे हिलने दें। लातिहान के द्वारा आप अपने अंतस को शरीर के माध्यम से प्रकट होने दें, और उस अभिव्यक्ति में पूरा सहयोग दें।

चौथा चरण
लेट जाएं और सर्वथा निष्क्रिय हो रहें, साक्षी हो रहें।

मंडल ध्यान

घंटेभर के इस शक्तिशाली ध्यान में पंद्रह-पंद्रह मिनट के चार चरण हैं। पहला चरण खड़े होकर करना है; दूसरा बैठकर; तीसरा और चौथा सर्वथा निष्क्रिय होकर। सूर्योदय के बाद या सूर्यास्त के पहले, इसे कभी भी किया जा सकता है।

पहला चरण
आंखें खुली रखकर एक ही स्थान पर खड़े-खड़े दौड़ें। जहां तक बन पड़े घुटनों
को ऊपर उठाएं। श्वास को गहरा और सम रखें। इससे ऊर्जा सारे शरीर में घूमने लगेगी।

दूसरा चरण
आंखें बंद कर बैठ जाएं। मुंह को शिथिल और खुला रखें--और धीमे-धीमे चक्राकार झूमें--जैसे हवा में पेड़-पौधे झूमते हैं। इससे भीतर जागी ऊर्जा नाभि-केंद्र पर आ जाएगी।

तीसरा चरण
अब आंखें खोलकर पीठ के बल सीधे लेट जाएं और दोनों आंखों की पुतलियों
को क्लॉकवाइज़--बाएं से दाएं वृत्ताकार घुमाएं। पहले धीरे-धीरे घुमाना शुरू करें, क्रमशः गति को तेज और वृत्त को बड़ा करते जाएं।
मुंह को शिथिल व खुला रखें तथा सिर को बिल्कुल स्थिर। श्वास मंद एवं कोमल बनी रहे। इससे नाभि-केंद्रित ऊर्जा तीसरी-आंख पर आ जाएगी।

चौथा चरण
आंखें बंद कर निष्क्रिय हो रहें। विश्राम में चले जाएं--ताकि तीसरी- आंख पर एकत्रित हो गयी ऊर्जा अपना काम कर सके।

प्रार्थना ध्यान

प्रार्थना एक भाव-दशा है--निसर्ग के साथ बहने की, एक होने की प्रक्रिया है। यदि प्रार्थना में तुम बोलना चाहो तो बोल सकते हो, लेकिन याद रहे कि तुम्हारी बातचीत अस्तित्व को प्रभावित नहीं करने जा रही है, वह तुम्हें प्रभावित करेगी। तुम्हारी प्रार्थना परमात्मा के मन को बदलने वाली नहीं है, वह तुम्हें बेशक बदल सकती है। और अगर वह तुम्हें नहीं बदलती है तो समझो कि वह मन की एक चालाकी भर है। यह विराट आकाश तुम्हारे साथ होगा, यदि तुम उसके साथ हो सको। इसके अतिरिक्त प्रार्थना का कोई दूसरा ढंग नहीं है। मैं प्रार्थना करने को कहता हूं--लेकिन यह ऊर्जा आधारित घटना हो, न कि कोई भक्ति की बात।

पहला चरण
तुम चुप हो जाओ, तुम अपने को खोल भर लो। दोनों हाथ सामने की ओर उठा लो।
हथेलियां आकाशोन्मुख हों और सिर सीधा उठा हुआ रहे। और तब अनुभव करो कि अस्तित्व तुममें प्रवाहित हो रहा है।
जैसे ही ऊर्जा या प्राण तुम्हारी बांहों से होकर नीचे की ओर बहेगा, वैसे ही तुम्हें हल्के-हल्के कंपन का अनुभव होगा।
तब तुम हवा में कंपते हुए पत्ते की भांति हो जाओ। शरीर को ऊर्जा से झनझना जाने दो--और जो भी होता हो, उसे होने दो। उसे पूरा सहयोग करो।

दूसरा चरण
दो या तीन मिनट के बाद--या जब भी तुम पूरी तरह भरे हुए अनुभव करो, तब तुम आगे झुक जाओ और माथे को पृथ्वी से लगा लो।
दोनों हाथ सिर के आगे पूरे फैले रहेंगे और हथेलियां भी पृथ्वी को स्पर्श करेंगी।
पृथ्वी की ऊर्जा के साथ दिव्य-ऊर्जा के मिलन के लिए तुम वाहन बन जाओ।
अब पृथ्वी के साथ प्रवाहित होने का, बहने का अनुभव करो। अनुभव करो कि पृथ्वी और स्वर्ग, ऊपर और नीचे, यिन और यांग, पुरुष और नारी--सब एक महा आलिंगन में आबद्ध हैं। तुम बहो, तुम घुलो। अपने को पूरी तरह छोड़ दो और सर्व में निमज्जित हो जाओ।
दोनों चरणों को छह बार और दुहराओ, ताकि सभी सात चक्रों तक ऊर्जा गति
कर सके।
इन्हें अधिक बार भी दुहराया जा सकता है, लेकिन सात से कम पर छोड़ा तो बेचैनी अनुभव होगी--रात में न सो सकोगे।
अच्छा हो कि यह प्रार्थना रात में करो। प्रार्थना के समय कमरे को अंधेरा कर लो और उसके बाद तुरंत सो जाओ।
सुबह भी इसे किया जा सकता है, लेकिन तब अंत में पंद्रह मिनट का विश्राम आवश्यक हो जाएगा। अन्यथा तुम्हें लगेगा कि तुम तंद्रा में हो, नशे में हो। यह ऊर्जा में निमज्जन प्रार्थना है। यह प्रार्थना तुम्हें बदलेगी। और तुम्हारे बदलने के साथ ही अस्तित्व भी बदल जाएगा।

सामूहिक प्रार्थना ध्यान

सामूहिक प्रार्थना ध्यान के लिए कम से कम तीन व्यक्ति होने चाहिए। बड़ी संख्या के साथ करना अधिक श्रेयस्कर है। और संध्या का समय सर्वाधिक योग्य है इसके लिए।

पहला चरण
एक घेरे में खड़े हो जाएं, आंखें बंद कर लें और अगल-बगल के मित्रों के हाथ अपने हाथ में ले लें। फिर धीरे-धीरे, लेकिन आनंदपूर्वक और तेज स्वर में ओम्--ऐसा उच्चार शुरू करें। बीच-बीच में, उच्चार के अंतराल के बीच एक मौन की घड़ी को प्रविष्ट होने दें। अपनी और अपने परिवेश की दिव्यता और पूर्णता का अनुभव करें और अपने अहंकार को घुलकर उच्चार में निमज्जित हो जाने दें।
जिनके पास आंखें हैं, वे देखेंगे कि समूह के बीच से ऊर्जा का एक स्तंभ ऊपर उठ रहा है। कोई अकेला आदमी बहुत-कुछ नहीं कर सकता है--लेकिन यदि पांच सौ व्यक्ति सम्मिलित होकर इस प्रार्थना में योग दें, तो इसकी बात ही कुछ और है।

दूसरा चरण
दस मिनट के बाद, समूह के नेता के इशारे पर जब हाथ से हाथ छूटकर नीचे आ जाएं, तब सब कोई जमीन पर झुक जाएं और पृथ्वी को प्रणाम करें, और ऊर्जा को पृथ्वी में प्रविष्ट हो जाने दें।

रात्रि-ध्यान

रात्रि, सोने के पूर्व, बिस्तर पर लेट जाएं, कमरे में अंधेरा कर लें,
और आंख बंद करके जोर से श्वास मुंह से बाहर निकालें।
निकालने से शुरू करें--एग्ज़ेहलेशन, लेने से नहीं, निकालने से। जोर से श्वास मुंह से बाहर निकालें, और निकालते समय ओऽऽऽऽऽ की ध्वनि करें। जैसे- जैसे ध्वनि साफ होने लगेगी, ओम अपने आप निर्मित हो जाएगा; आप सिर्फ ओऽऽऽऽऽ का उच्चार करें। ओम का आखिरी हिस्सा, अपने आप, जैसे ध्वनि व्यवस्थित होगी-- आने लगेगा।
आपको ओम नहीं कहना है, आपको सिर्फ ओऽऽऽऽऽ कहना है--म को आने देना है। पूरी श्वास को बाहर फेंक दें, फिर ओंठ बंद कर लें और शरीर को श्वास लेने दें। आप मत लें।
निकालना आपको है, लेना शरीर को है। लेने का काम शरीर कर लेगा। श्वास रोकनी नहीं है। लेते समय आप को कुछ भी नहीं करना है--न लेना है, न रोकना है-- बस, छोड़ना है।
तो दस मिनट तक ओऽऽऽऽऽ की आवाज के साथ श्वास को छोड़ें--मुंह से; फिर नाक
से श्वास लें, फिर मुंह से छोड़ें, फिर नाक से लें और ऐसे ओऽऽऽऽऽ की आवाज करते-करते सो जाएं।
इससे निद्रा गहरी और स्वप्नहीन हो जाएगी तथा सुबह उठने पर एक अपूर्व ताजगी का अनुभव होगा।

शिवनेत्र ध्यान

यह एक घंटे का ध्यान है और इसमें दस-दस मिनट के छह चरण हैं। साधकों के सामने जरा हटकर, थोड़ी ऊंचाई पर, एक नीले रंग का प्रकाश--यानी बिजली का बल्ब जलता है, जो प्रकाश को घटाने-बढ़ाने वाले एक यंत्र के द्वारा, दस मिनट में तीन बार, बारी-बारी धीमा और तेज किया जाता है। उसके सहारे ही यह ध्यान संचालित होता है।
(प्रकाश को घटाने-बढ़ाने वाले यंत्र, डिमिंग स्विच, के साथ 300 वॉट का नीले रंग का प्रकाश इसके लिए आदर्श है, लेकिन साधारणतः नीले प्रकाश या मोमबत्ती से भी काम चलाया जा सकता है।)

पहला चरण
थिर बैठें। हल्के-हल्के, बिना आंखों में कोई तनाव लाए सामने जल रहे प्रकाश को देखें।

दूसरा चरण
आंखें बंद कर लें, और कमर से ऊपर के भाग को हौले-हौले दाएं से बाएं और बाएं से दाएं हिलाएं। और साथ ही साथ यह भी अनुभव करते रहें कि आपकी आंखों ने पहले चरण के समय जो प्रकाश पीया है, वह अब शिवनेत्र--यानी तीसरी आंख में प्रवेश कर रहा है।
यह सचमुच घटित होता है।
दोनों चरणों को बारी-बारी तीन बार दोहराएं।

अग्निशिखा ध्यान

अच्छा हो कि शाम के समय अग्निशिखा ध्यान किया जाए। और यदि मौसम गर्म
हो तो कपड़े उतारकर। इस ध्यान-विधि में पांच-पांच मिनट के तीन चरण हैं।

पहला चरण
कल्पना करें कि आपके हाथ में एक ऊर्जा का गोला है--गेंद है। थोड़ी देर में यह गोला कल्पना से यथार्थ-सा हो जाएगा। वह आपके हाथ पर भारी हो जाएगा।

दूसरा चरण

ऊर्जा की इस गेंद के साथ खेलना शुरू करें। इसके वजन को, इसके द्रव्यमान को अनुभव करें। जैसे-जैसे यह ठोस होता जाए, इसे एक हाथ से दूसरे हाथ में फेंकना शुरू करें। यदि आप दक्षिणहस्तिक हैं तो दाएं हाथ से शुरू करें और बाएं हाथ से अंत; और यदि वामहस्तिक हैं तो यह प्रक्रिया उलटी होगी।
गेंद को हवा में उछालें, अपने चारों ओर उछालें, अपने पैरों के बीच से उछालें--लेकिन ध्यान रखें कि गेंद जमीन पर न गिरे। अन्यथा खेल फिर से शुरू करना पड़ेगा। इस चरण के अंत में गेंद को बाएं हाथ में लिए हुए दोनों हाथ सिर के ऊपर उठा लें और फिर गेंद को दोनों हथेलियों के बीच में रख लें। अब गेंद को नीचे लाएं और अपने सिर पर आकर उसे टूट-फूट जानें दें; ताकि उसकी ऊर्जा से आपका शरीर आपूरित हो जाए। कल्पना करें कि आप पर ऊर्जा की वर्षा हो रही है--और आपके शरीर के चारों ओर ऊर्जा का आवरण बन गया है।
अब आपके चारों तरफ से ऊर्जा आपकी तरफ आकर्षित होने लगेगी; उसकी पर्त
दर पर्त आप पर बरसेगी। यहां तक कि दूसरे चरण के अंत में आप ऊर्जा की सात पर्तों में समा जाएंगे।
भाव के साथ नाचें, इसका मजा लें, इसमें स्नान करें--और अपने शरीर को भी
इस उत्सव में भाग लेने दें।

तीसरा चरण
जमीन पर झुक जाएं और दोनों हाथों को प्रार्थना की मुद्रा में सामने फैला दें--और फिर कल्पना करें कि आप ऊर्जा की अग्निशिखा हैं--आपसे होकर ऊर्जा भूमि से ऊपर उठ रही है। धीरे-धीरे आपके हाथ, आपकी भुजाएं आपके सिर के भी ऊपर उठ जाएंगी और आपका शरीर अग्निशिखा का आकार ले लेगा।

त्राटक ध्यान 1

यह ध्यान चालीस मिनट का है और इसमें बीस-बीस मिनट के दो चरण हैं।

पहला चरण
पांच या छह फुट की ऊंचाई पर ओशो का एक बड़ा सा फोटो दीवार पर इस प्रकार टांगें कि फोटो पर पर्याप्त प्रकाश पड़े। शरीर पर कम से कम और ढीले वस्त्र रखें। फोटो से चार-पांच फुट की दूरी पर खड़े हो जाएं। दोनों हाथ ऊपर उठाएं, एकटक ओशो के फोटो को देखें--और हू-हू-हू की तीव्र आवाज लगातार करते हुए उछलना शुरू करें। ओशो की उपस्थिति अनुभव करें और हू-हू-हू की आवाज तेज करें। न आंखें बंद करें, न पलकें झपकाएं। आंसू आते हों तो आने दें। आंखें फोटो पर एकाग्र रखें और शरीर में जो भी कंपन और क्रियाएं होती हों, उसे सहयोग करके तीव्र करें।
महामंत्र--हू की चोट से भीतर की काम-ऊर्जा ऊपर की ओर उठेगी।

दूसरा चरण
अब सारी क्रियाएं--हू-हू-हू की आवाज, उछलना और ओशो के चित्र को एकटक देखना--सब बंद कर दें। शरीर को बिल्कुल स्थिर कर लें, आंखें मूंद लें और भीतर की ऊर्जा को अनुभव करें। गहरे ध्यान में डूब जाएं। बीस मिनट के बाद गहरे ध्यान से वापस लौट आएं।
इस प्रकार यह त्राटक ध्यान पूरा होगा।

त्राटक ध्यान 2

यह प्रयोग एक घंटे का है। पहला चरण चालीस मिनट का और दूसरा बीस मिनट का।

पहला चरण
कमरे को चारों ओर से बंद कर लें, और एक बड़े आकार का दर्पण अपने सामने रखें। कमरे में बिल्कुल अंधेरा होना चाहिए। अब एक दीपक या मोमबत्ती जलाकर

दर्पण के बगल में इस प्रकार रखें कि उसकी रोशनी सीधी दर्पण पर न पड़े। सिर्फ आपका चेहरा ही दर्पण में प्रतिबिंबित हो, न कि दीपक की लौ। अब दर्पण में अपनी दोनों आंखों में बिना पलक झपकाए देखते रहें--लगातार चालीस मिनट तक। अगर आंसू निकलते हों तो उन्हें निकलने दें, लेकिन पूरी कोशिश करें कि पलक गिरने न पाए। आंखों की पुतलियों को भी इधर-उधर न घूमने दें--ठीक दोनों आंखों में झांकते रहें।
दो-तीन दिन के भीतर ही विचित्र घटना घटेगी--आपके चेहरे दर्पण में बदलने प्रारंभ हो जाएंगे। आप घबरा भी सकते हैं। कभी-कभी बिल्कुल दूसरा चेहरा आपको दिखाई देगा, जिसे आपने कभी नहीं जाना है कि वह आपका है। पर ये सारे चेहरे आपके ही हैं। अब आपके अचेतन मन का विस्फोट प्रारंभ हो गया है। कभी-कभी आपके विगत जन्म के चेहरे भी उसमें आएंगे। करीब एक सप्ताह के बाद यह शक्ल बदलने का क्रम बहुत तीव्र हो जाएगा; बहुत सारे चेहरे आने-जाने लगेंगे, जैसा कि फिल्मों में होता है। तीन सप्ताह के बाद आप पहचान न पाएंगे कि कौन सा चेहरा आपका है। आप पहचानने में समर्थ न हो पाएंगे, क्योंकि इतने चेहरों को आपने आते-जाते देखा है। अगर आपने इसे जारी रखा, तो तीन सप्ताह के बाद, किसी भी दिन, सबसे विचित्र घटना घटेगी--अचानक आप पाएंगे कि दर्पण में कोई चेहरा नहीं है--दर्पण बिल्कुल खाली है और आप शून्य में झांक रहे हैं! यही महत्वपूर्ण क्षण है।
तभी आंखें बंद कर लें और अपने अचेतन का साक्षात करें। जब दर्पण में कोई प्रतिबिंब न हो, तो सिर्फ आंखें बंद कर लें, भीतर देखें--और आप अचेतन का साक्षात करेंगे।
वहां आप बिल्कुल नग्न हैं--निपट जैसे आप हैं। सारे धोखे वहां तिरोहित
हो जाएंगे। यह एक सत्य है, पर समाज ने बहुत सी पर्तें निर्मित कर दी हैं, ताकि मनुष्य उससे अवगत न हो पाए। एक बार आप अपने को पूरी नग्नता में देख लेते हैं, तो आप बिल्कुल दूसरे आदमी होने शुरू हो जाते हैं। तब आप अपने को धोखा नहीं दे सकते हैं। अब आप जानते हैं कि आप क्या हैं। और जब तक आप यह नहीं जानते कि आप क्या हैं, आप कभी रूपांतरित नहीं हो सकते। कारण, कोई भी रूपांतरण इस नग्न-सत्य के दर्शन में ही संभव है; यह नग्न-सत्य किसी भी रूपांतरण के लिए बीजरूप है। अब आपका असली चेहरा सामने है, जिसे आप रूपांतरित कर सकते हैं। और वास्तव में, ऐसे क्षण में रूपांतरण की इच्छा मात्र से रूपांतरण घटित हो जाएगा, और कुछ भी करने की जरूरत नहीं है।

दूसरा चरण
अब आंखें बंद कर विश्राम में चले जाएं।

कीर्तन ध्यान

कीर्तन अवसर है--अस्तित्व के प्रति अपने आनंद और अहोभाव को निवेदित करने का। उसकी कृपा से जो जीवन मिला, जो आनंद और चैतन्य मिला, उसके लिए अस्तित्व के प्रति हमारे हृदय में जो प्रेम और धन्यवाद का भाव है, उसे हमें कीर्तन में नाचकर, गाकर, उसके नाम-स्मरण की धुन में मस्ती में थिरककर अभिव्यक्त करते हैं।
कीर्तन उत्सव है--भक्ति-भाव से भरे हुए हृदय का। व्यक्ति की भाव-ऊर्जा
का समूह की भाव ऊर्जा में विसर्जित होने का अवसर है कीर्तन।
इस प्रयोग में शरीर पर कम और ढीले वस्त्रों का होना तथा पेट का खाली होना बहुत सहयोगी है।
कीर्तन ध्यान एक घंटे का उत्सव है, जिसके पंद्रह-पंद्रह मिनट के चार चरण हैं।
संध्या का समय इसके लिए सर्वोत्तम है।

पहला चरण
पहले चरण में कीर्तन-मंडली संगीत के साथ एक धुन गाती है--जैसे "गोविंद बोलो हरि गोपाल बोलो, राधा रमण हरि गोपाल बोलो।"

इस धुन को पुनः गाते हुए आप नृत्यमग्न हो जाएं। धुन और संगीत में पूरे भाव से डूबें, और अपने शरीर और भावों को बिना किसी सचेतन व्यवस्था के थिरकने तथा नाचने दें। नृत्य और धुन की लयबद्धता में अपनी भाव-ऊर्जा को सघनता और गहराई की ओर विकसित करें।

दूसरा चरण
दूसरे चरण में धुन का गायन बंद हो जाता है, लेकिन संगीत और नृत्य जारी रहता है।
अब संगीत की तरंगों से एकरस होकर नृत्य जारी रखें। भावावेगों एवं आंतरिक प्रेरणाओं को बच्चों की तरह निस्संकोच होकर पूरी तरह से अभिव्यक्त होने दें।

तीसरा चरण
तीसरा चरण पूर्ण मौन और निष्क्रियता का है।
संगीत के बंद होते ही आप अचानक रुक जाएं। समस्त क्रियाएं बंद कर दें
और विश्राम में डूब जाएं। जाग्रत हुई भाव-ऊर्जा को भीतर ही भीतर काम करने दें।

चौथा चरण
चौथा चरण पूरे उत्सव की पूर्णाहुति का है।
पुनः शुरू हो गए मधुर संगीत के साथ आप अपने आनंद, अहोभाव और धन्यवाद
के भाव को नाचकर पूरी तरह से अभिव्यक्त करें।

सूफी दरवेश नृत्य

यह एक प्राचीन सूफी विधि है, जो हमें चैतन्य साक्षी में केंद्रित करती है। इस विधि की शांत, मद्धिम, संगीतपूर्ण, लयबद्ध स्वप्निलता हमें अपने आत्म-स्रोत को अनुभव करने में विशेष सहयोगी है।
लंबे समय तक शरीर के गोल घूमने से चेतना का तादात्म्य शरीर से टूट जाता है--शरीर तो घूमता रहता है, परंतु भीतर एक अकंप, अचल चैतन्य का बोध स्पष्ट होता चला जाता है।
इस प्रयोग को शुरू करने से तीन घंटे पूर्व तक किसी भी प्रकार का आहार
या पेय नहीं लेना चाहिए, ताकि पेट हल्का और खाली हो।
शरीर पर ढीले वस्त्र रहें, तथा पैर में जूते या चप्पल न हों तो ज्यादा अच्छा है।
इसके लिए समय का कोई बंधन नहीं है, आप घंटों इसे कर सकते हैं।
सूर्यास्त के पहले का समय इस प्रयोग के लिए सर्वोत्तम है। यह केवल दो चरणों का ध्यान है।

पहला चरण
अपनी जगह बना लें जहां आपको घूमना है। आंखें खुली रहेंगी। अब दाहिने हाथ को ऊपर उठा लें--कंधों के बराबर ऊंचाई तक, और उसकी खुली हथेली को आकाशोन्मुख रखें।
फिर बाएं हाथ को उठाकर नीचे इस तरह से झुका लें कि हथेली जमीन की ओर उन्मुख रहे। दायीं हथेली से ऊर्जा आकाश से ली जाएगी और बायीं हथेली से पृथ्वी को लौटा दी जाएगी।
अब इसी मुद्रा में एंटि-क्लॉकवाइज़--याने दाएं से बाएं--लट्टू की तरह गोल घूमना शुरू करें। यदि एंटि-क्लॉकवाइज़ घूमने में कठिनाई महसूस हो, तो क्लॉकवाइज़--याने बाएं से दाएं--घूमें। घूमते समय शरीर और हाथ ढीले हों-- तने हुए न हों। धीमे-धीमे शुरू कर गति को लगातार बढ़ाते जाएं--जब तक कि गति आपको पूरा ही न पकड़ ले।
गति के बढ़ाने से चारों ओर की वस्तुएं और पूरा दृश्य अस्पष्ट होने लगेगा, तब आंखों से उन्हें पहचानना छोड़ दें, और उन्हें और अधिक अस्पष्ट

होने में सहयोग दें। वस्तुओं, वृक्षों और व्यक्तियों की जगह एक प्रारंभहीन और अंतहीन वर्तुलाकार प्रवाह-मात्र रह जाए।
घूमते समय ऐसा अनुभव करें कि पूरी घटना का केंद्र नाभि है और सब कुछ नाभि के चारों ओर हो रहा है। इसमें किसी प्रकार की आवाज या भावावेगों का रेचन, कैथार्सिस न करें। जब आपको लगे कि अब आप और नहीं घूम सकते, तो इतनी तेजी से घूमें कि आपका शरीर और आगे घूमने में असमर्थ होकर आप ही आप जमीन पर गिर पड़े। याद रहे, भूलकर भी व्यवस्था से न गिरें। यदि आपका शरीर ढीला होगा, तो जमीन पर गिरना भी हल्के से हो जाएगा और किसी प्रकार की चोट नहीं लगेगी। मन का कहना मानकर शरीर को समय से पहले न गिरने दें।

दूसरा चरण
गिरते ही पेट के बल लेट जाएं, ताकि आपकी खुली हुई नाभि का स्पर्श पृथ्वी से हो सके। यदि पेट के बल लेटने में अड़चन होती हो, तो पीठ के बल लेटें। पूरे शरीर का--नाभि सहित--पृथ्वी से स्पर्श होने दें। पृथ्वी से एक छोटे बच्चे की भांति चिपक जाएं और उन दिनों की अनुभूतियों की पुनरुज्जीवित कर लें, जब आप छोटी उम्र में अपनी मां की छाती से चिपके रहा करते थे। अब आंखें बंद कर लें, और शांत और शून्य होकर इस स्थिति में कम से कम पंद्रह मिनट तक पड़े रहें। अनुभव करें कि नाभि के माध्यम से आप पृथ्वी से एक हो गए हैं--व्यक्ति विसर्जित हो गया है विराट में; व्यक्ति मिट गया है और समष्टि ही रह गयी है।

ओशो ध्यान योग
अध्याय-5

प्रवचन-अंश

क्या तुम ध्यान करना चाहते हो?

क्या तुम ध्यान करना चाहते हो? तो ध्यान रखना कि ध्यान में न तो तुम्हारे सामने कुछ हो, न पीछे कुछ हो। अतीत को मिट जाने दो और भविषय को भी। स्मृति और कल्पना--दोनों को शून्य होने दो। फिर न तो समय होगा और न आकाश ही होगा। उस क्षण जब कुछ भी नहीं होता है--तभी जानना कि तुम ध्यान में हो।

ध्यान कैसे करें?

ध्यान के लिए पूछते हो कि कैसे करें? कुछ भी न करो। बस, शांति से श्वास-प्रश्वास के प्रति जागो। होशपूर्वक श्वास-पथ को देखो। श्वास के आने-जाने के साक्षी रहो। यह कोई श्रमपूर्ण चेष्टा न हो, वरन शांत और शिथिल विश्रामपूर्ण बोध-मात्र हो। और फिर तुम्हारे अनजाने ही, सहज और स्वाभाविक रूप से एक अत्यंत प्रसादपूर्ण स्थिति में तुम्हारा प्रवेश होगा। इसका भी पता नहीं चलेगा तुम कब प्रविष्ट हो गए हो। अचानक ही तुम अनुभव करोगे कि तुम वहां हो, जहां कि कभी नहीं थे।

मौन कैसे हों?

पूछते हो, मौन कैसे हों? बस, हो जाओ। बहुत विधि और व्यवस्था की बात नहीं है। चारों ओर जो हो रहा है, उसे सजग होकर देखो। और जो सुनाई पड़ रहा है, उसे साक्षी-भाव से सुनो। संवेदनाओं के प्रति होश तो पूरा हो, पर प्रतिक्रिया न हो। प्रतिक्रिया शून्य सजगता से मौन सहज ही निश्पन्न होता है।

स्वप्न में कैसे जागें?

स्वप्न में--"जो हम देख रहे हैं वह सत्य नहीं है, स्वप्न है"--इसे स्मरण रखने का उपाय है?
जो व्यक्ति जाग्रत अवस्था में यह स्मरण रखता है कि वह जो भी देख रहा
है वह सब स्वप्न है, तब वह धीरे-धीरे स्वप्न में भी जानने लगता है कि जो वह देख रहा है, वह सत्य नहीं है। जाग्रत को क्योंकि हम सत्य मानते हैं, इसलिए स्वप्न भी सत्य मालूम होते हैं। जाग्रत में जो हमारे चित्त की आदत है, स्वप्न में उसी का प्रतिफलन होता है।

विचारों से कैसे मुक्त हों?

विचारों से मुक्ति का क्या उपाय है? साधारणतः जब तक मनुष्य प्रत्येक विचार की गति के साथ गतिमय होता रहता है, तब तक उसे विचारों से पैदा हो रही अशांति का अनुभव ही नहीं होता है। लेकिन जब वह रुककर--ठहरकर विचारों को देखता है, तभी उसे उनकी सतत दौड़ और अशांति का प्रत्यक्ष बोध होता है। विचारों से मुक्ति की दिशा में यह आवश्यक अनुभूति है। हम खड़े होकर देखें तभी विचारों की व्यर्थ भागदौड़ का पता चल सकता है। निश्चय ही, जो उनके साथ ही दौड़ता रहता है, वह इसे कैसे जान सकता है!
विचारों की प्रक्रिया के प्रति एक निर्वैयक्तिक भाव को अपनाएं-- एकमात्र दर्शक का भाव। जैसे देखने-मात्र से ज्यादा आपका उनसे और कोई संबंध नहीं। और जब विचारों के बादल मन के आकाश को घेरें, और गति करें, तो उनसे पूछें--विचारो! तुम किसके हो? क्या तुम मेरे हो?" और आपको स्पष्ट उत्तर मिलेगा--"नहीं, तुम्हारे नहीं।"

निश्चय ही यह उत्तर मिलेगा, क्योंकि विचार आपके नहीं हैं। वे आपके अतिथि हैं। आपको सराय बनाया हुआ है। उन्हें अपना मानना भूल है। और वही भूल उनसे मुक्त नहीं होने देती है। उन्हें अपना मानने से जो तादात्म्य पैदा होता है, वही तो विसर्जित नहीं होने देता है। ऐसे, जो मात्र अतिथि हैं, वे ही स्थायी निवासी बन जाते हैं।
विचारों को निर्वैयक्तिक भाव से देखने से क्रमशः उनसे संबंध टूटता है। जब कोई वासना उठे या विचार, तब ध्यान दें कि यह वासना उठ रही है--या कि विचार उठ रहा है। फिर देखें और जानें कि अब विलीन हो रहा है--अब विलीन हो चुका है। अब दूसरा विचार उठ रहा है----विलीन हो गया है।
और इस भांति शांति से, अनुद्विग्न भाव से दर्शक की भांति साक्षी बनकर विचारों की सतत धारा का निरीक्षण करें। इस भांति शांत चुनावरहित निरीक्षण से विचारों की गति क्षीण होती जाती है, और अंततः निर्विचार-समाधि उपलब्ध होती है।
निर्विचार-समाधि में विचार तो विलीन हो जाते हैं और विचारशक्ति का उद्भव होता है। उस विचारशक्ति को ही मैं प्रज्ञा कहता हूं।
विचारशक्ति के जागरण के लिए विचारों से मुक्त होना अत्यंत आवश्यक है।

शून्य कैसे हों?

शून्य से पूर्ण का दर्शन होता है। और शून्य आता है विचार-प्रक्रिया
के तटस्थ, चुनावरहित साक्षी-भाव से। विचार में शुभाशुभ का निर्णय नहीं करना है। वह निर्णय राग या विराम लाता है। किसी को रोक रखने और किसी को परित्याग करने का भाव उससे पैदा होता है। वह भाव ही विचार-बंधन है। वह भाव ही चित्त का जीवन और प्राण है। उस भाव के आधार पर ही विचार की श्रृंखला अनवरत चलती जाती है।
विचार के प्रति कोई भी भाव हमें विचार से बांध देता है। उसके तटस्थ साक्षी का अर्थ है, विचार को निर्भाव के बिंदु से देखना। विचार को निर्भाव के बिंदु से देखना ध्यान है। बस, देखना है, "जस्ट सीइंग" और चुनाव नहीं करना है, और निर्णय नहीं लेना है।
यह--"बस देखना"--बहुत श्रमसाध्य है। यद्यपि कुछ करना नहीं है, पर कुछ न कुछ करते रहने की हमारी इतनी आदत बनी है कि "कुछ न करने" जैसा सरल और सहज कार्य भी बहुत कठिन हो गया है। बस, देखने-मात्र के बिंदु पर स्थिर होने से क्रमशः विचार विलीन होने लगते हैं। वैसे ही, जैसे प्रभात में सूर्य के उत्ताप में दूब पर जमे ओसकण वाष्पीभूत हो जाते हैं।
बस, देखने का उत्ताप विचारों के वाष्पीभूत हो जाने के लिए पर्याप्त है। वह राह है जहां से शून्य उदघटित होता है और मनुष्य को आंख मिलती है--और आत्मा मिलती है।

ध्यान की परिभाषा

ध्यान किसे कहते हैं, और उसे करने की क्या विधि है?
निर्विचार-चेतना ध्यान है। और निर्विचारणा के लिए विचारों के प्रति जागना ही विधि है।
विचारों का सतत प्रवाह है मन। इसी प्रवाह के प्रति मूर्च्छित होना-- सोए होना--अजाग्रत होना साधारणतः हमारी स्थिति है।
इस मूर्च्छा से पैदा होता है तादात्म्य। मैं मन ही मालूम होने लगता हूं। जागें और विचारों को देखें।
जैसे कोई राह चलते लोगों को किनारे खड़े होकर देखे। बस, इसे जागकर देखने से क्रांति घटित होती है। विचारों से स्वयं का तादात्म्य टूटता है।
इस तादात्म्य-भंग के अंतिम छोर पर ही निर्विचार-चेतना का जन्म होता है।
ऐसे ही, जैसे आकाश में बादल हट जाएं, तो आकाश दिखाई पड़ता है। विचारों से रिक्त चित्ताकाश ही स्वयं की मौलिक स्थिति है। वही समाधि है।
ध्यान है विधि। समाधि है उपलब्धि।

लेकिन, ध्यान के संबंध में सोचें मत। ध्यान के संबंध में विचारना भी विचार ही है। उसमें तो जाएं। डूबें। ध्यान को सोचें मत--चखें।
मन का काम है सोना और सोचना। जागने में उसकी मृत्यु है। और ध्यान है जागना। इसीलिए मन कहता है--चलो, ध्यान के संबंध में ही सोचें। यह उसकी आत्म-रक्षा का अंतिम उपाय है।
इससे सावधान होना। सोचने की जगह, देखने पर बदल देना। विचार नहीं, दर्शन--बस, यही मूलभूत सूत्र है। दर्शन बढ़ता है, तो विचार क्षीण होते हैं। साक्षी जागता है, तो स्वप्न विलीन होता है।
ध्यान आता है, तो मन जाता है। मन है द्वार, संसार का। ध्यान है द्वार, मोक्ष का। मन से जिसे पाया है, ध्यान में वह खो जाता है। मन से जिसे खोया है, ध्यान में वह मिल जाता है।

निराकार के ध्यान की विधि

क्या निराकार वस्तु का ध्यान हो सकता है? और यदि हो सकता है, तो क्या निराकार निराकार ही बना रहेगा?
ध्यान का साकार या निराकार से कोई भी संबंध नहीं है। और न ध्यान का विषय-वस्तु से ही कोई संबंध है। ध्यान है विषय-वस्तु-रहितता--प्रगाढ़ निद्रा की भांति। लेकिन, निद्रा में चेतना नहीं है--और ध्यान में चेतना पूर्णरूपेण है। अर्थात निद्रा अचेतन-ध्यान है, या ध्यान सचेतन-निद्रा है। प्रगाढ़ निद्रा में भी हम वहीं होते हैं, जहां ध्यान में होते हैं--लेकिन, मूर्च्छित। ध्यान में भी हम वहीं होते हैं, जहां निद्रा में होते हैं-- लेकिन, जाग्रत।
जागते हुए सोना ध्यान है। या सोते हुए जागना ध्यान है। फिर जो जाना जाता है, वह न आकार है, न निराकार है। वह है आकार में निराकार, या निराकार में आकार। असल में वहां द्वंद्व नहीं है, द्वैत नहीं है। और, इसलिए हमारे सब शब्द व्यर्थ हो जाते हैं। वहां न ज्ञाता है, न ज्ञेय है; न दृश्य है, न द्रष्टा है। इसलिए, वहां जो है, उसे कहना असंभव है। कठिन नहीं, असंभव है। ध्यान है मन की मृत्यु, और भाषा है मन की अर्धांगिनी। वह मन के साथ ही सती हो जाती है। वह विधवा होकर जीना नहीं जानती है। जाने, तो जी नहीं सकती है। और उसका पुनर्विवाह भी नहीं हो सकता है। क्योंकि मन के पार जो है, वह उससे विवाह के लिए चिर-अनुत्सुक है। उसका विवाह हो ही चुका है--शून्यता से।

स्वाध्याय और ध्यान का अंतर

स्वाध्याय और ध्यान में क्या अंतर है?
स्वाध्याय अर्थात स्वयं का अध्ययन। और स्वयं का अध्ययन विचार के बिना संभव नहीं है। इसलिए स्वाध्याय विचार की ही प्रक्रिया है, जबकि ध्यान है विचारातीत। वह है विचारों के प्रति जागना। स्वाध्याय है, सोचना।
ध्यान है, जागना। सोचने में जागना नहीं है। क्योंकि जागे और सोचना गया। सोच-विचार में होने के लिए निद्रा आवश्यक है।
सोच-विचार, आंखें खोलकर स्वप्न देखना है। स्वप्न, आदिम सोच-विचार है। स्वप्न चित्रों की भाषा में सोचते हैं। सोचना स्वप्न का सभ्य रूप है।
सोचने में चित्रों की जगह शब्द और प्रत्यय ले लेते हैं। लेकिन ध्यान एक अलग ही आयाम है। वह स्वप्न-मात्र से मुक्ति है। वह विचार-मात्र के पार जाना है। स्वप्न अचेतन मन का चिंतन है। विचार चेतन मन का चिंतन है। ध्यान मनातीत है।
चेतन मन जब अन्य को विषय बनाता है, तो भी वह विचार है, और जब स्वयं को विषय बनाता है, तो भी। ध्यान में विषय से ऊपर उठना है--विषय मात्र से। इससे कोई मौलिक भेद नहीं पड़ता है कि विषय क्या है। धन है या धर्म? पर
है या स्व। मौलिक भेद--रूपांतरण या क्रांति तो तभी घटित होती है, जब चेतना विषय के बाहर हो जाती है। क्योंकि तभी "स्व" को जाना जा सकता है। जब चेतना के पास जानने को कुछ भी शेष नहीं बचता है, तभी वह स्वयं को जान पाती है।

ज्ञेय जब कोई भी नहीं है, तभी आत्मज्ञान होता है। अर्थात स्वाध्याय है स्वयं के संबंध में सोच-विचार, और ध्यान है स्वयं को जानना। और निश्चय ही, जिसे जानते ही नहीं, उसके संबंधों में सोचेंगे-विचारेंगे क्या? और जिसे जान ही लिया, उसके संबंध में सोच-विचार का प्रश्न ही कहां है?
इसलिए स्वाध्याय से बचें तो अच्छा है। क्योंकि वह भी ध्यान में बाधा है--और सर्वाधिक सबल। क्योंकि वह ध्यान का नाटक बन जाती है। मन तो उससे बहुत प्रसन्न होता है, क्योंकि इस भांति वह पुनः स्वयं को बचा लेता है। लेकिन, साधक भटक जाता है। वह फिर विषय में उलझ जाता है।
मन है विषय-उन्मुखता। उसे चाहिए विषय। यह विषय फिर चाहे कोई भी हो-- काम हो या राम, वह विषय मात्र से राजी है। इसीलिए ध्यान के लिए काम और राम दोनों से ऊपर उठना आवश्यक है। "पर" और "स्व" दोनों को सम-भाव से विदा देनी है। तभी वह प्रकट होता है, जो "स्व" है--और जो कि "पर" भी है। या कि जो न "स्व" है न "पर" है वरन "बस है"।

ध्यान की अंतिम अवस्था तथा दिन-प्रतिदिन वृद्धि

ध्यान की गहराई में उतरने से उसकी दिन-प्रतिदिन वृद्धि किस प्रकार से होगी, और ध्यान की अंतिम अवस्था क्या है?
आप भोजन कर लेते हैं, फिर उसे पचाना नहीं होता है, वह पचता है। ऐसे ही
आप जागें विचारों के प्रति। विचारों के प्रति मूर्च्छा न रहे--इतना आप करें। यह है ध्यान का भोजन। फिर पचना अपने आप होता है। पचना याने ध्यान का खून बनना--ध्यान की गहराई। भोजन आप करें--और पचना परमात्मा पर छोड़ दें। वह काम सदा से ही उसने स्वयं के हाथों में ही रखा हुआ है।
लेकिन, यद्यपि आप भोजन पचा नहीं सकते हैं, फिर भी उसके पचने में बाधा जरूर डाल सकते हैं। ध्यान के संबंध में भी यही सत्य है। आप ध्यान के गहरे होने में बाधा जरूर डाल सकते हैं। विचारों के प्रति सूक्ष्मतम चुनाव और झुकाव ही बाधा है।
शुभ या अशुभ में चुनाव न करें। निंदा या स्तुति, दोनों से बचें। न कोई विचार अच्छा है, न बुरा। विचार सिर्फ विचार है। और आपको विचार के प्रति जागना है। सूक्ष्मतम चुनाव भी बाधा है जागने में। तराजू के दोनों पलड़े सम हों, तभी ध्यान का कांटा स्थिर होता है। और ध्यान का कांटा स्थिर हुआ कि तराजू, पलड़े और कांटा--सब तिरोहित हो जाते हैं। फिर जो शेष रह जाता है, वही समाधि है; वही ध्यान की अंतिम अवस्था है।

निर्विचार हो जाने पर मन की परिस्थिति

साक्षीभाव से मन को देखने से जब मन निर्विचार हो जाता है, उसके बाद क्या परिस्थिति होती है?
परिस्थिति? परिस्थिति वहां कहां? बस, सब परिस्थितियां मिट जाती हैं,
और वही शेष रह जाता है जो है। और जो है, वह सदा से है। परिस्थिति प्रतिपल बदलती है, वह कभी नहीं बदलता है। परिस्थिति परिवर्तन है, और वह सनातन। परिस्थिति में सुख है, दुख है। सुख दुख में बदलता है, दुख सुख में बदलता है। बदलता है, तो और कोई राह भी नहीं है। और वहां न सुख है न दुख है, क्योंकि वहां परिवर्तन नहीं है। फिर वहां जो है उसी का नाम आनंद है।
ध्यान रहे कि आनंद सुख नहीं है। क्योंकि सुख वही है, जो दुख में बदल सकता है। और आनंद दुख में नहीं बदलता है। आनंद बदलता ही नहीं है। इसीलिए आनंद से विपरीत कोई स्थिति नहीं है, आनंद अकेला है। आनंद अद्वैत है।
ऐसे ही, परिस्थिति में ही जन्म है, मृत्यु है। जहां जन्म है, वहां मृत्यु होगी ही। वे एक ही पेंडुलम की दो परिवर्तन स्थितियां हैं। जन्म मृत्यु बनता रहा है। फिर मृत्यु जन्म बनती रहती है। परिस्थिति इसी चक्र का नाम है। और वहां--सत्य में--न जन्म है, न मृत्यु।
कहें कि वहां जीवन है। जन्म की उलटी परिस्थिति मृत्यु है। जीवन से उलटा कुछ भी नहीं है। वहां जीवन है, जीवन है, और जीवन है। रस, आनंद, जीवन का नाम ही ब्रह्म है।

मन स्थिर करने का उपाय

मन को स्थिर कैसे करें? उसका उपाय क्या है?
मन स्थिर होता ही नहीं। वस्तुतः अस्थिरता, चंचलता का नाम ही मन है। इसीलिए मन या तो होता है, या नहीं होता है। मन या अ-मन, बस ऐसी ही दो स्थितियां हैं। मन से सत्य संसार की भांति दिखता है। संसार अर्थात चंचलता के द्वार से देखा गया ब्रह्म। और अ-मन से, जो है, वह वैसा ही दिखता है, जैसा है।
सत्य जैसा है, उसे वैसा ही जानना ब्रह्म है। इसलिए मन को स्थिर करने
की बात ही न पूछें। मन को स्थिर नहीं करना है, बल्कि मिटाना है। शांत-तूफान-जैसी कोई चीज देखी-सुनी है? ऐसे ही शांत-मन-जैसी कोई चीज नहीं है। मन अशांति का ही पर्याय है। और तब उपाय का तो सवाल ही नहीं उठता है। सब उपाय मन के ही हैं। मन मिटाना है तो उपाय करने में नहीं, निरुपाय में जाना पड़ता है। उपाय करने से मन घटता नहीं बढ़ता है। क्योंकि उपाय वही तो करता है। और मन ही जो करता है, उससे मन कैसे मिट सकता है?
फिर क्या करें? नहीं, करें कुछ भी नहीं। बस, जागें--देखें, सारी बातें।
मन को ही देखें; मन के प्रति होशपूर्ण हों। और फिर धीरे-धीरे मन गलता है, पिघलता है, मिटता है। साक्षी-भाव सूर्योदय की भांति मन की ओस को वाष्पीभूत कर देता है। चाहें तो कहें कि यही उपाय है।

मन में उठते बुरे भावों का निराकरण

मन में उठते बुरे भावों को किस प्रकार रोका जाए?
यदि रोकना है, तो रोकना ही नहीं। रोका, कि वे आए। उनके लिए निषेध सदा निमंत्रण है। और दमन से उनकी शक्ति कम नहीं होती, वरन बढ़ती है। क्योंकि दमन से वे मन की और भी गहराइयों में चले जाते हैं। और न ही उन भावों को बुरा कहना। क्योंकि बुरा कहते ही उनसे शत्रुता और संघर्ष शुरू हो जाता है। और स्वयं में स्वयं से संघर्ष, संताप का जनक है। ऐसे संघर्ष से शक्ति का अकारण अपव्यय होता है, और व्यक्ति निर्बल होता जाता है। जीतने का नहीं, हारने का ही यह मार्ग है।
फिर क्या करें?
पहली बात--जानें कि न कुछ बुरा है, न भला है--बस भाव हैं। उन पर मूल्यांकन न जड़ें; क्योंकि तभी तटस्थता संभव है।
दूसरी बात--रोकें नहीं, देखें। कर्ता नहीं, द्रष्टा बनें। क्योंकि तभी संघर्ष से विरत हो सकते हैं।
तीसरी बात--जो है, उसे बदलना नहीं है, स्वीकार करना है। जो है, सब परमात्मा का है। इसलिए आप बीच में न आएं, तो अच्छा है।
आपके बीच में आने से ही अशांति है। और अशांति में कोई भी रूपांतरण संभव नहीं है। समग्र-स्वीकृति का अर्थ है कि आप बीच से हट गए हैं। और आपके हटते ही क्रांति है। क्योंकि जिन्हें आप बुरे भाव कह रहे हैं, उनके प्राणों का केंद्र अहंकार है। अहंकार है, तो वे हैं। अहंकार गया कि वे गए। आपके हटते ही वह सब हट जाता है, जिसे कि आप जन्मों-जन्मों से हटाना चाहते थे और नहीं हटा पाए थे। क्योंकि उन सबों की जड़ें आपमें ही छिपी थीं। लेकिन, लगता है कि आप सोच में पड़ गए!
सोचिए नहीं, हटिए। बस हट ही जाइए, और देखिए। जैसे अंधे को अनायास आंखें मिल जाएं, बस ऐसे ही सब कुछ बदल जाता है। जैसे अंधेरे में अचानक दीया जल उठे, बस ऐसे ही सब कुछ बदल जाता है।
कृपा करिए और हटिए!

सजग जीने की विधि और सजगता से तात्पर्य

सजगता से आपका क्या तात्पर्य है? पल-पल सजग जीवन कैसे जीया जाता है?

सजगता से तात्पर्य है, बस सजगता। साधारणतः मनुष्य सोया-सोया जीता है। स्वयं की विस्मृति निद्रा है। और स्वयं का स्मरण जागृति। ऐसे जीएं कि कोई भी स्थिति स्वयं को न भुला सके। उठते-बैठते, चलते-फिरते--सब में--विश्राम में "स्व" न भूलें। "मैं हूं" इसकी सतत चेतना बनी रहे। फिर धीरे-धीरे "मैं" मिट जाता है। और मात्र "हूं" रह जाता है।
क्रोध आए, तो जानें कि "मैं हूं"--और क्रोध नहीं आएगा। क्योंकि क्रोध केवल निद्रा में ही प्रवेश करता है। विचार घेरें, तो जानें कि "मैं हूं"-- और विचार विदा होने लगेंगे। क्योंकि वे केवल निद्रा के ही संगी-साथी भर हैं। और जब चित्त से काम, क्रोध, लोभ, मोह सब विदा हो जाएंगे, तब अंत में विदा होगा "मैं", और जहां मैं नहीं वहीं वह है, जो ब्रह्म है।

ओशो ध्यान योग
अध्याय-6

साधना सूत्र

यहां प्रस्तुत हैं ओशो के विभिन्न साधकों को संकेत कर व्यक्तिगत रूप
से लिखे गए साधना-संबंधी इक्कीस पत्र।

ये पत्र "प्रेम के फूल, ढाई आखर प्रेम का, अंतर्वीणा, पद घुंघरू बांध, तत्वमसि तथा टरनिंग इन, गेटलेस गेट, दि साइलेंट म्यूज़िक, व्हाट इज़ मेडीटेशन" आदि विविध पत्र-संकलनों से चुने गए हैं।
इन पत्रों में साधना सूत्रों की ओर सूक्ष्म इशारे हैं।

तीन सूत्र--साक्षी-साधना के

साक्षी-भाव की साधना के लिए इन तीन सूत्रों पर ध्यान दो--
1. संसार के कार्य में लगे हुए श्वास के आवागमन के प्रति जागे हुए रहो। शीघ्र ही साक्षी का जन्म हो जाता है।
2. भोजन करते समय स्वाद के प्रति होश रखो। शीघ्र ही साक्षी का आविर्भाव होता है।
3. निद्रा के पूर्व जब कि नींद आ नहीं गयी है और जागरण जा रहा है-- सम्हलो और देखो। शीघ्र ही साक्षी पा लिया जाता है।

चेतना के प्रतिक्रमण का रहस्य-सूत्र

अंधकार बाहर ही है। भीतर तो सदा ही आलोक है। ध्यान बहिर्गामी है तो रात्रि है। ध्यान अंतर्गामी बने तो रात्रि दूर हो जाती है, और सुबह का जन्म हो जाता है। बाहर से हटाएं मन को। मुड़ें भीतर की ओर। शब्द से न रहें-- मौन हो। विचार से विश्राम लें--शून्य हो। बाह्य को भूलें--और स्मरण करें उसका जो भीतर है। जब भी समय मिले--चेतना की धारा को भीतर की ओर ले चलें। सोते समय--सोने के पूर्व आंखें बंद करें और भीतर देखें। जागते समय--ज्ञात हो कि नींद टूट गयी है तो आंखें न खोलें--पहले देखें भीतर। और धीरे-धीरे चेतना के क्षितिज पर सूर्योदय हो जाएगा। और जिसके भीतर प्रकाश है, फिर उसके बाहर भी अंधकार नहीं रह जाता है।

निद्रा में जागरण की विधि--जागृति में जागना

जागृति में ही जागें। निद्रा या स्वप्न में जागने का प्रयास न करें। जाग्रत में जागने के परिणाम स्वरूप ही अनायास निद्रा या स्वप्न से भी जागरण उपलब्ध होता है। लेकिन उसके लिए करना कुछ भी नहीं है। कुछ करने से उसमें बाधाएं ही पैदा हो सकती हैं। निद्रा तो जागरण का प्रतिफलन है। जो हम जागते में हैं, वही हम सोते में हैं। यदि हम जागते में ही सोए हुए हैं, तो निद्रा भी निद्रा है। जागते में विचारों का प्रवाह ही सोते में स्वप्नों का जाल है। जागने में जागते ही निद्रा में भी जागरण का प्रतिफलन शुरू हो जाता है। जागते में विचार नहीं तो फिर सोते में स्वप्न भी मिट जाते हैं।

ब्रह्म का मौन-संगीत

ध्वनि से ध्वनिशून्यता में जाना मार्ग है।
धीरे-धीरे ओऽम जैसी ध्वनि का सुर उच्चार करो।
और जैसे ध्वनि शून्यता में प्रवेश करे
वैसे ही तुम भी कर जाओ,
या किन्हीं दो ध्वनियों के अंतराल में ठहरो।
और तुम स्वयं ध्वनि-शून्यता हो जाओगे।
या, एक झरने की अनवरत ध्वनि में नहाओ--

या किसी अन्य की।
या, कानों में अंगुलियां डालकर सब ध्वनियों की उदगम ध्वनि को सुनो।
और तब अकस्मात तुम्हारे ऊपर
ब्रह्म के मौन-संगीत का विस्फोट हो जाएगा।
किसी भी ढंग से ध्वनि-शून्यता
के खड्ड में गिर जाओ--
और तुम प्रभु को पा लोगे।

सुनने की कला

जो भी मैं कहता हूं, उसमें नया कुछ नहीं है। न ही उसमें कुछ भी पुराना है। या वह दोनों है--पुराने से पुराना और नए से नया। और यह जानने के लिए तुम्हें मुझे सुनने की जरूरत नहीं। ओह! सुनो प्रातः पक्षियों के कलरव को-- या फूलों को और धूप में चमकती घास की बालियों को--और तुम उसे सुन लोगे। और यदि तुम्हें सुनना नहीं आता, तो तुम मुझसे भी न जान सकोगे। इसलिए वास्तविक बात यह नहीं है कि तुम क्या सुनते हो--वरन तुम कैसे सुनते हो। क्योंकि संदेश तो सब जगह है--सब जगह--सब जगह। अब मैं तुम्हें सुनने की कला बतलाता हूं--
घूमते रहो जब तक कि प्रायः निढाल न हो जाओ। या नाचो--या तीव्रता से श्वास लो और तब जमीन पर गिरकर सुनो। अथवा, जोर-जोर से अपना नाम दोहराओ जब तक कि थक न जाओ। और तब अचानक रुको और सुनो। अथवा, नींद-प्रवेश के बिंदु पर, जब कि नींद अभी भी नहीं आयी हो और बाह्य-जागरण चला गया हो--अचानक सतर्क हो जाओ और सुनो। और, तब तुम मुझे सुन लोगे।

शरीर में घनिष्ठता से जीने का आनंद

शरीर में आत्मीयता से जीयो। और, घनिष्ठता से। शरीर को अधिक अनुभव करो। और शरीर को अधिक अनुभव करने दो। यह आश्चर्यजनक है कि कितने ही लोग स्वयं की शरीरिक सत्ता के प्रति प्रायः अनभिज्ञ हैं! शरीर को अत्यधिक दबाया गया है और जीवन को नकारा गया है। इसी कारण यह मात्र एक मृत बोझ है, एक जीवंत आह्लाद नहीं। इसी कारण मैं जोर देता हूं कि शरीर में वापस लौट जाओ और उसकी गतिविधियों में आश्चर्यजनक उल्लास को पुनः प्राप्त करो। विशुद्ध गतिविधियों में इसे ध्यान ही बना लो और तुम्हें बहुत लाभ होगा--इतना कि समझ के बाहर!

सजग होकर स्वप्न देखना--एक ध्यान

स्वप्न देखने को सचेतन रूप से ध्यान बनाओ। और, भलीभांति जानो कि सजग होकर स्वप्न देखना अवलोकन के नए द्वार खोलता है। लेट जाओ, विश्राम करो और स्वप्न देखो। पर सो नहीं जाना। भीतर सजग बने रहो। प्रतीक्षा करो और सतर्क रहो। मन में जो भी स्वप्न आए उसे देखो--क्योंकि स्वप्न में सारा संसार तुम्हारा है। जैसा तुम्हें भाए, स्वयं को स्वप्न में देखो। स्वप्न देखो और संतुष्ट हो जाओ। संतुष्ट अपने स्वप्नों से--क्योंकि वे तुम्हारे हैं और स्मरण रखो कि तुम्हारे स्वप्नों की भांति कुछ भी तुम्हारा नहीं हो सकता है--क्योंकि तुम स्वयं भी एक स्वप्न-सत्ता हो। और इसलिए भी, क्योंकि तुम्हारे स्वप्न में ही तुम्हारी इच्छाएं वास्तविक होती हैं--सिर्फ तुम्हारे स्वप्नों में। लेकिन उनसे तादात्म्य मत करो। उनके साक्षी बनो। सजग रहो। और, तब, अचानक स्वप्न विलीन हो जाएगा। और, केवल तुम्हीं होओगे। और प्रकाश होगा।

स्मरण--एक का

सदैव एक का स्मरण रखो जो कि शरीर के भीतर है। चलते हुए, बैठे हुए, खाते हुए--या कुछ भी करते हुए एक का स्मरण रखो, जो कि न तो चल रहा है, न ही बैठा है, न ही खा रहा है। सब करना ऊपर सतह पर है। और सब करने के पार हमारा होना है। इसलिए सब करने में अकर्ता के प्रति, चलने में अचल के प्रति सजग रहो। एक दिन मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी अपने कमरे की ओर भागी--जब उसने एक भारी धम्म की आवाज सुनी। "घबरानेवाली कोई बात नहीं"--मुल्ला ने कहा--"मेरा यह पाजामा जमीन पर गिर गया था।" "क्या----और इतने जोर का धमाका हुआ?"--उसकी बीबी ने पूछा। "हां, उस समय मैं उसके भीतर जो था"--मुल्ला ने कहा।

ध्यान--मृत्यु पर

मृत्यु के सीधे साक्षात से जीवन अधिक प्रामाणिक हो जाता है। लेकिन हम सदा मृत्यु के तथ्य से बचने की कोशिश करते हैं। और इससे जीवन मिथ्या और कृत्रिम बन जाता है। और मृत्यु से भी बदतर। क्योंकि प्रामाणिक मृत्यु का भी अपना एक सौंदर्य है। जब कि मिथ्या जीवन मात्र कुरूप है। मृत्यु पर ध्यान करो--क्योंकि मृत्यु का साक्षात किए बिना जीवन को जानने का उपाय नहीं है। और वह सब कहीं है। जहां कहीं जीवन है, मृत्यु भी है। वे, वास्तव में, उसी एक घटना के दो पहलू हैं। और जब कोई यह जान लेता है--वह दोनों का अतिक्रमण कर जाता है। और केवल उसी अतिक्रमण में चेतना समग्ररूपेण खिलती है। और होता है सत्ता का आनंद।

स्वयं को पाना हो तो दूसरों पर ज्यादा ध्यान मत देना

फकीर झुगान सुबह होते ही जोर से पुकारता--"झुगान! झुगान!" सूना होता उसका कक्ष। उसके सिवाय और कोई भी नहीं। सूने कक्ष में स्वयं की ही गूंजती आवाज को वह सुनता--"झुगान! झुगान!" उसकी आवाज को आसपास के सोए वृक्ष भी सुनते। वृक्ष पर सोए पक्षी भी सुनते। निकट ही सोया सरोवर भी सुनता। और फिर वह स्वयं ही उत्तर देता--"जी, गुरुदेव! आज्ञा, गुरुदेव!" उसके इस प्रत्युत्तर पर वृक्ष हंसते। पक्षी हंसते। सरोवर हंसता। और फिर वह कहता--"ईमानदार बनो, झुगान! स्वयं के प्रति ईमानदार बनो!" वृक्ष भी गंभीर हो जाते। पक्षी भी। और वह कहता "जी, गुरुदेव!" और फिर कहता--"स्वयं को पाना है तो दूसरों पर ज्यादा ध्यान मत देना" वृक्ष भी चौंककर स्वयं का ध्यान करते। पक्षी भी। सरोवर भी।
और झुगान कहता--"जी, हां! जी, हां!" और फिर इस एकालाप के बाद झुगान बाहर निकलता तो वृक्षों से कहता--"सुना?" पक्षियों से कहता--"सुना?" सरोवर से कहता--"सुना?" और फिर हंसता। कहकहे लगाता।
कहते हैं वृक्षों को, पक्षियों को, सरोवरों को उसके कहकहे अभी भी याद हैं। लेकिन मनुष्यों को? नहीं--मनुष्यों को कुछ भी याद नहीं है। यह मोनो- नाटक (मोनो-ड्रामा) तुम्हारे बड़े काम का है। इसका तुम रोज अभ्यास करना। सुबह उठकर--उठते ही बुलाना जोर से। ध्यान रहे कि धीरे नहीं--बुलाना है जोर से। इतने जोर से कि पास-पड़ोस सुने! फिर कहना--"जी, गुरुदेव!" फिर कहना--"स्वयं को पाना है तो दूसरों पर ज्यादा ध्यान मत देना।" और फिर कहना--"जी, हां! जी, हां!" और यह सब इतने जोर से कहना कि तुम्हें ही नहीं, औरों को भी इसका लाभ हो। फिर हंसते हुए बाहर आना। कहकहे लगाना। और हवाओं से पूछना--"सुना?" बादलों से पूछना--"सुना?"

अदृश्य के दृश्य और अज्ञात के ज्ञात होने का उपाय--ध्यान

अदृश्य को दृश्य करने का उपाय पूछते हैं? दृश्य पर ध्यान दें। मात्र देखें नहीं, ध्यान दें। अर्थात जब फूल को देखें तो स्वयं का सारा अस्तित्व आंख बन जाए। पक्षियों को सुनें तो सारा तन प्राण कान बन जाए। फूल देखें तो सोचें नहीं। पक्षियों को सुनें तो विचारें नहीं। समग्र चेतना (टोटल कांशसनेस) से देखें या सुनें या सूंघे या स्वाद लें या स्पर्श करें। क्योंकि, संवेदनशीलता (सेंसटिविटी) के उथलेपन के कारण ही अदृश्य दृश्य

नहीं हो पाता है और अज्ञात अज्ञात ही रह जाता है। संवेदना को गहरावें। संवेदना में तैरें नहीं, डूबें। इसे ही मैं ध्यान (मेडीटेशन) कहता हूं। और ध्यान में दृश्य भी खो जाता है और अंततः दर्शन होता है और अज्ञात ज्ञात होता है। यही नहीं--अज्ञेय (अननोएबल) भी ज्ञेय हो जाता है। और ध्यान रखें कि जो भी मैं लिख रहा हूं--उसे भी सोचें न, वरन करें। "कागज लेखी" से न कभी कुछ हुआ है, न हो ही सकता है। "आंखन देखी" के अतिरिक्त कोई और द्वार नहीं है।

जीवन नृत्य है

आकाश से थोड़ा तालमेल बढ़ाएं। आंखों को विराट को पीने दें। दिन हो या रात--जब भी मौका मिले आकाश पर ध्यान करें, आकाश को उतरने दें हृदय में। शीघ्र ही बीच से पर्दा उठने लगेगा। भीतर और बाहर का आकाश आलिंगन करने लगेगा। स्वयं के मिटने में इससे सहायता मिलेगी। अहं के विसर्जन में इससे मार्ग बनेगा। और यदि अनायास ही आकाश पर ध्यान करते-करते तन-मन नृत्य को आतुर हो उठें तो स्वयं को रोकना नहीं--नाचना। हृदयपूर्वक नाचना। पागल होकर नाचना। उस नृत्य से जीवन रूपांतरण की अनूठी कुंजी हाथ लग जाती है। क्योंकि नृत्य ही है अस्तित्व। अस्तित्व के होने का ढंग ही नृत्यमय है। अणु-परमाणु नृत्य में लीन हैं--ऊर्जा अनंत रूपों में नृत्य कर रही है। जीवन नृत्य है।

स्वयं की कील

संसार का चक्र घूम रहा है, लेकिन उसके साथ तुम क्यों घूम रहे हो? शरीर
और मन के भीतर जो है, उसे देखो। वह तो न कभी घूमा है, न घूम रहा है, न घूम सकता है। वही तुम हो। "तत्वमसि, श्वेतकेतु"। सागर को सतह पर लहरें हैं, पर गहराई में? वहां क्या है? सागर को उसकी सतह ही समझ लें तो बहुत भूल हो जाती है। बैलगाड़ी के चाक को देखना। चाक घूमता है, क्योंकि कील नहीं घूमती है। स्वयं की कील का स्मरण रखो। उठते, बैठते, सोते, जागते उसकी स्मृति को जगाए रखो। धीरे-धीरे सारे परिवर्तनों के पीछे उसके दर्शन होने लगते हैं जो कि परिवर्तनशील नहीं है।

स्वीकार से दुख का विसर्जन

दुख को स्वीकार करें। दुख से भागें नहीं। जो दुख से भागता है, दुख उससे कभी नहीं भागता। जो दुख से नहीं भागता है, दुख उससे भाग जाता है। यही शाश्वत नियम है। दुख से बचने के लिए ध्यान न करें। ध्यान करें--ध्यान के लिए ही। ध्यान के आनंद के लिए ही ध्यान करें। और दुख फिर खोजे से भी नहीं मिलेगा।

अवलोकन--वृत्तियों की उत्पत्ति, विकास व विसर्जन का

भीतर की आवाज पर ज्यादा से ज्यादा ध्यान दो। उसे सुनो एकाग्र होकर। उसके द्वारा साक्षी जन्म लेना चाह रहा है। क्रोध हो कि प्रेम--जैसे ही भीतर से कोई कहे--देख ले! यह तेरा क्रोध!--वैसे ही शांत-एकाग्रता से देखने में लग जाना। निश्चय ही, देखते ही वृत्ति विलीन हो जाएगी। तब वृत्ति को विलीन होते देखना। विलीन हो गया देखना। वृत्ति का उठना, फैलना, विलीन होना, विलीन हो जाना--जब चारों स्थितियां समग्ररूपेण देख ली जाती हैं तब ही वृत्तियों का रूपांतरण (ट्रांसफोर्मेशन) होता है। और चित्तवृत्तियों का रूपांतरण ही निरोध है। और ऐसे निरोध को ही पतंजलि ने योग कहा है। योग द्वार है उसका जो कि चित्त के पार है। और जो चित्त के पार है वही शाश्वत है, वही सत्य है।

क्रोध के दर्शन से क्रोध की ऊर्जा का रूपांतरण

जब क्रोध आए तो दो-चार गहरी सांसें लेना और क्रोध के साक्षी बनना। क्रोध न तो करना ही और न क्रोध से लड़ना ही। क्रोध को देखना। क्रोध के दर्शन से क्रोध की ऊर्जा (इनर्जी) क्षमा में रूपांतरित हो जाती है। पूछोगे-- क्यों? ऐसे ही जैसे 100 डिग्री तापमान पर पानी वाष्पीभूत हो जाता है। या, ऐसे ही जैसे हाइड्रोजन और आक्सीजन के मिलने से जल निर्मित हो जाता है।

काम-ऊर्जा का रूपांतरण--संभोग में साक्षित्व से

कामवासना स्वाभाविक है। उससे लड़ना नहीं, अन्यथा उसके विकृत-रूप चित्त को घेर लेंगे। काम (सेक्स) को समझो और काम-कृत्य (सेक्स-ऐक्ट) को भी ध्यान का विषय बनाओ। काम में, संभोग में भी साक्षी (विटनेस) बनो। संभोग में साक्षी-भाव के जुड़ते ही काम-ऊर्जा (सेक्स-इनर्जी) का रूपांतरण प्रारंभ हो जाता है। वह रूपांतरण ही ब्रह्मचर्य है। ब्रह्मचर्य काम का विरोध नहीं-- काम-ऊर्जा का ही ऊर्ध्वगमन है। जीवन में जो भी है उसे मित्रता से और अनुग्रह से स्वीकार करो। शत्रुता का भाव अधार्मिक है। स्वीकार से परिवर्तन का मार्ग सहज ही खुलता है। शक्ति तो सदा ही तटस्थ है। वह न बुरी है, न अच्छी। शुभ या अशुभ उससे सीधे नहीं--वरन उसके उपयोग से ही जुड़े हैं।

काम-वृत्ति पर ध्यान

कामवासना से भयभीत न हों। क्योंकि भय हार की शुरुआत है। उसे भी स्वीकार करें। वह भी है और अनिवार्य है। हां--उसे जानें जरूर--पहचानें। उसके प्रति जागें। उसे अचेतन (अनकांशस) से चेतन (कांशस) बनाएं। निंदा से यह कभी भी नहीं हो सकता है। क्योंकि, निंदा दमन (रिप्रेशन) है। और दमन की वृत्तियों को अचेतन में ढकेल देता है। वस्तुतः तो दमन के कारण ही चेतना चेतन और अचेतन में विभाजित हो गई है। और यह विभाजन समस्त द्वंद्व (कांफ्लिक्ट) का मूल है। यह विभाजन ही व्यक्ति को अखंड नहीं बनने देता है। और अखंड बने बिना शांति का, आनंद का, मुक्ति का कोई मार्ग नहीं है। इसलिए कामवासना पर ध्यान करो। जब वह वृत्ति उठे तो ध्यानपूर्वक (माइंडफुली) उसे देखो। न उसे हटाओ, न स्वयं उससे भागो। उसका दर्शन अभूतपूर्व अनुभूति में उतार देता है। और ब्रह्मचर्य इत्यादि के संबंध में जो भी सीखा-सुना हो, उसे एक-बारगी कचरे की टोकरी में फेंक दो। क्योंकि, इसके अतिरिक्त ब्रह्मचर्य को उपलब्ध होने का कोई मार्ग नहीं है।

विचारों के पतझड़

विचारों के प्रवाह में बहना भर नहीं। बस जागे रहना। जानना स्वयं को पृथक और अन्य। दूर और मात्र द्रष्टा। जैसे राह पर चलते लोगों की भीड़ देखते हैं, ऐसे ही विचारों की भीड़ को देखना। जैसे पतझड़ में सूखे पत्तों को चारों ओर उड़ते देखते हैं, वैसे ही विचारों के पत्तों को उड़ते देखना। न उनके कर्ता बनना, न उनके भोक्ता। फिर शेष सब अपने आप हो जाएगा। उस शेष को ही मैं ध्यान (मेडीटेशन) कहता हूं।

आनंदातिरेक और भगवत्-मादकता का मार्ग

कल से निम्नलिखित ध्यान प्रारंभ करो। और जानो कि यह आदेश है। अब तुम मेरे इतने अपने हो कि सिवाय आदेश देने के मैं और कुछ नहीं कर सकता। पूर्व-आवश्यकताएं--
1. फ्रुल्लता से करो, 2. शिथिलता में करो, 3. आनंदित होओ। 4. प्रातः स्नान करने के बाद इसे करो।
ध्यान के चरण--
1. पहला चरण--लयबद्धता से गहरी श्वास लो। तेज नहीं, बल्कि धीमी गति से।
दस मिनट के लिए।

2. दूसरा चरण--मंद गति से लय में नाचो। आनंदित होओ। जैसे कि उसमें बह रहे हो। दस मिनट के लिए।
3. तीसरा चरण--महामंत्र हू-हू का उपयोग करो। हू--दस मिनट के लिए। नाचना
व हिलना-डोलना चलता रहे। गंभीर मत होना।
4. चौथा चरण--आंखें बंद कर लो और मौन हो जाओ। अब नाचना, या हिलना-डोलना नहीं करो। खड़े रहो, बैठ जाओ या लेट जाओ--जैसा भी तुम्हें ठीक लगे। पर ऐसे हो रहो, जैसे मर ही गए हो। गहरे डूबने का अनुभव करो। समर्पित हो जाओ और स्वयं को समग्र के हाथों में छोड़ दो। दस मिनट के लिए।
बाद की आवश्यकताएं--
1. पूरे दिन आनंदातिरेक में जीयो--भगवत-मादकता में। उसमें बहो और खिलो। जब कभी मन डूबता-सा लगे--भीतर कहो--हू-हू-हू और बाहर हंसो। हंसो बिना किसी कारण के। और, इस पागलपन को स्वीकार करो।
2. सोने के पहले, महामंत्र हू-हू-हू का उच्चार करो। दस मिनट के लिए। और
तब स्वयं पर हंसो।
3. प्रातः जब तुम्हें लगे कि जाग खुल गयी है, पुनः महामंत्र हू-हू-हू
का उच्चार करो। दस मिनट के लिए। और तब हृदयपूर्वक हंसते हुए दिन का प्रारंभ करो।
4. और, सदैव स्मरण रखो कि मैं तुम्हारे साथ हूं।

संवेदनशीलता बढ़ाने का प्रयोग

कभी आरामकुर्सी पर बैठकर ही अनुभव करें कि कितनी संवेदनाएं घट रही हैं--कुर्सी पर आपके शरीर का दबाव। कुर्सी से आपका स्पर्श। जमीन पर रखे आपके पैर। हवा का झोंका जो आपको छू रहा है। फूलों की गंध जो खिड़की से भीतर आ गई है। रसोई में बर्तनों की आवाज। बनते हुए भोजन की गंध जो आपके नासापुटों में भर गयी है। छोटे बच्चे की किलकारी छूती है और आह्लादित कर जाती है। किसी का चीत्कार, किसी का रोना जो आपको कंपित कर जाता है। अगर कोई रोज पंद्रह मिनट चुप बैठकर अपने चारों तरफ की संवेदनाओं का अनुभव करे, तो भी बड़े गहरे ध्यान को उपलब्ध होने लगेगा।